।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

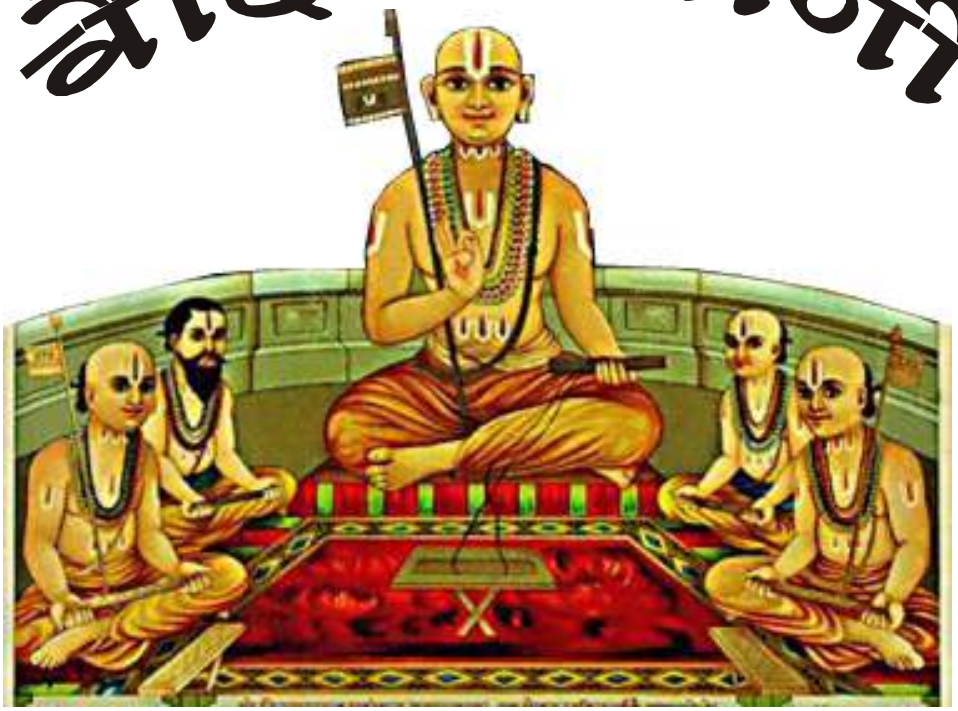

वर्ष- २३ जनवरी सन्- २०१० ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- १ रामानुजाब्द- ९९३ त्रैमासिक प्रकाशन

प्रबुद्धमुग्धाम्बुलचारुलोचनं सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम् ।
शुचिस्मितं कोमलगण्डमुन्नसं ललाटपर्यन्त-विलम्बितालकम् ।।

अर्थात् आपका सुन्दर नेत्र प्रस्फुटित मनोहर पद्म के समान हैं, भौंहें लताओं के समान टेढ़ी हैं, होठ उज्ज्वल हैं, हास्य निर्मल है, कपोल कोमल हैं, नाक ऊँची है तथा अलकें ललाट तक झुकी हुई हैं।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	जीवन का उद्देश्य परमानन्द की प्राप्ति	३
२.	बदरीनाथ	४
३.	उत्तराखण्ड के पावन तीर्थ	६
४.	माता-पिता की सेवा सुखद होती है।	८
५.	जप विधि	१०
६.	गलत कर्म का परिणाम	१२
७.	प्रेमपूर्वक समर्पित पत्रादि से भगवान् की शीघ्र प्रसन्नता	१३
८.	सुदुराचार पुरुष पर बदरीनारायण जी की कृपा	१६
९.	भगवदुपासना (मानसपूजा)	१८
१०.	गुरु-शिष्य संवाद	२०
११.	दैवी गुण का पालन ही मानवता है।	२१
१२.	श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी का सिद्धान्त एवम् प्रेम	२२
१३.	अस्त्रराज श्रीसुदर्शनचक्र	२४
१४.	उद्धव जी का प्रेम तथा उनका बदरीकाश्रम गमन	२६
१५.	हिमालय की तीर्थयात्रा	२८
१६.	श्रीवैकुण्ठनाथ से प्रार्थनास्वरूप श्रीवैकुण्ठ स्तव	३१
१७.	भवबन्धन से मुक्ति के लिए श्रीवैष्णवधर्म से प्रेम करें	३३
१८.	ब्रह्मतत्त्व क्या है?	३३
१९.	गृहप्रवेश मुहूर्त्त	३५
२०.	समय शुद्धि	३५

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

जीवन का उद्देश्य परमानन्द की प्राप्ति

मानव विवेकशील प्राणी है। मानव शरीर उसे अनन्त और अक्षय सुख प्राप्ति के लिए मिला है। ***'विचित्रादेहसम्पतिरीश्वराय निवेदितुम्'*** भगवान् श्रीराम के शब्दों में यह मोक्ष का द्वार है; परन्तु मानव क्षणिक भोग के सामने शरीर, जीवात्मा और भोग की क्षणिकता पर विचार न कर नश्वर सुख की उपलब्धि में अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहा है। संसार में स्त्री-पुरुष धन तथा अन्य भोगों की क्षणिकता को देखते तथा समझते हुए भी वह अन्धा बना हुआ है। ***'पश्यन्ऽपि न पश्यति''।*** वेदान्त दर्शन तैत्तिरीयोपनिषद् द्वितीय वल्ली के अष्टम अनुवाक में संसार के सुखों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक युवा मनुष्य जो सदाचारी, अच्छे स्वभाव वाला, अच्छे कुल में उत्पन्न, सम्पूर्ण वेदों का मर्मज्ञ, ब्रह्मचारियों को सदाचार की शिक्षा देने में कुशल, जिसके सम्पूर्ण अङ्ग और इन्द्रियाँ रोग रहित और सुदृढ़ हो, जो सब प्रकार के बल से सम्पन्न हो, जिसे सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन का अधिकार प्राप्त है, वह मानव लोक का एक सबसे महान् आनन्द प्राप्त किया है, उससे सौ गुणा मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द है। मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द है। मनुष्य गन्धर्वों की अपेक्षा देव गन्धर्वों को सौ गुणा आनन्द है। देव गन्धवों की अपेक्षा चिर स्थायी दिव्य पितरों के सौ गुणा आनन्द होता है। पितरों के आनन्द की अपेक्षा आजानज नामक देवों को सौ गुणा आनन्द होता है। आजानज देवों को आनन्द की अपेक्षा कर्म देवों को सौ गुणा आनन्द होता है। कर्म देवों की अपेक्षा स्वभावसिद्ध देवों को सौ गुणा आनन्द मिलता है। स्वभावसिद्ध देवों की अपेक्षा इन्द्र को सौ गुणा अधिक आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्र के आनन्द की अपेक्षा वृहस्पति को सौ गुणा आनन्द का अनुभव होता है। वृहस्पति के आनन्द की अपेक्षा प्रजापति को सौ गुणा आनन्द मिलता है। प्रजापति के आनन्द से भी हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) को सौ गुणा आनन्द प्राप्त है। इस प्रकार एक से दूसरे आनन्द की अधिकता का वर्णन करते-करते सबसे बढ़कर हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के आनन्द को बतलाया। इस जगत् में जितने प्रकार के आनन्द देखने, सुनने तथा समझने में आते हैं वे सब पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा के आनन्द की अपेक्षा बहुत ही अल्प तथा नश्वर है।

अत: जगत् के सभी आनन्दों को छोड़कर परमानन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। परमात्मा की प्राप्ति से परमानन्द प्राप्त होता है, जिसका नाश कभी भी नहीं होता। संसार के मनुष्य से लेकर ब्रह्मा तक के सारे आनन्द अल्प और नश्वर हैं। चूँकि समयानुसार आयु पूरी होने पर सबको शरीर छोड़ देना पड़ता है। ब्रह्मा की भी अपने वर्ष से एक सौ वर्ष की आयु होती है। इसलिए महाप्रलय काल में उनका भी क्षय हो जाता है। एक नारायण का ही नाश नहीं होता।

'एको ह वै नारायण आसीद् न ब्रह्मा नेशानः'

(उपनिषद्)

नारायण के प्राप्ति के लिए शरणागति सर्वोत्तम उपाय है। ममता और अहंकार को त्यागकर दिनभाव से भगवान् के चरणों में समर्पित हो जाना ही शरणागति है। ***'मामेव मे प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'*** भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो शुद्ध भाव से अपने जीवन को मेरे चरणों में समर्पित कर देता है उसे मैं संसार के कष्टों से सदा के लिए मुक्त कर देता हूँ।

बदरीनाथ

बदरीनाथ के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए विशेष पुराणों का सहारा लेना आवश्यक है। लगभग सभी पुराणों में न्यूनाधिक्य रूप में बदरीनाथ के सम्बन्ध में विवरण मिलता है। नारदपुराण में पाँच शिलाओं का उल्लेख मिलता है।

१. नारदशिला- जहाँ नारद जी तप किये थे ।

२. वैनतेयशिला- जहाँ गरुड़ जी तीस वर्षों तक तप किये थे।

३. वाराहीशिला- हिरण्याक्ष बध के बाद वाराह भगवान-शिला रूप में अवस्थित हो गये थे।

४. नारसिंहशिला- हिरण्यकशिपु का वध कर नृसिंह भगवान जहाँ शिलारूप में हो गये थे।

५. नरनारायणशिला -जहाँ नरनारायण रूप में भगवान् तपस्या करते थे। सत्ययुग में भुक्ति-मुक्तिदायक नर-नारायण भगवान् सभी को दर्शन देते थे। त्रेता में केवल मुनि, देवता और योगी ही दर्शन कर पाते थे। द्वापर में ज्ञानयोग से उनका दर्शन होता था। कलियुग में वे अदृश्य हो गये हैं, ऐसा ही महाभारत में उल्लेख है कि नर-नारायण ही द्वापर में श्रीकृष्ण और अर्जुन के अवतार धारण किये। कलियुग में अदृश्य हो जाने पर ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन ऋषियों ने भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् ने आकाशवाणी की कि यदि आपलोगों को दर्शन करने की ईच्छा है तो नारदकुण्ड में मेरी शिलामयी मूर्त्ति है उसे निकालकर तो ले आईये। देवताओं ने नारदकुण्ड से निकालकर उस मूर्त्ति को ऊपर लाया। शालग्राम शिला पर ध्याना-वस्थित चतुर्भज रूप में वह मूर्त्ति दिखायी दे रही थी। विश्वकर्मा ने उनके लिए मन्दिर बनाया और उसी मन्दिर में देवताओं ने भगवान् की मूर्ति की स्थापना की। मन्दिर के अर्चक के रूप में नारद जी की नियुक्ति कर दी गई। तब से छः मास (वैशाख शुक्ल से कार्त्तिक तक) मनुष्य और छः महीने (मार्गशीर्ष से वैशाख कृष्ण तक) देवताओं द्वारा भगवान् के श्रीविग्रह की अर्चना होती है; क्योंकि शीतकाल के छः मासों में बदरिकाश्रम हिमाच्छादित होने से मनुष्यों के लिए अगम्य हो जाता है।

वैशाखे मासि ते देवा गच्छन्ति निजमन्दिरम् ।
कार्तिके तु समागत्य पुनरर्चां चरंति च।
ततो वैशाखमारभ्य मानवा हिमसंक्षयात् ।।
लभन्ते दर्शनं पुण्याः पापकर्मविवर्जिताः।
षण्मासं दैवतैः पूज्या षण्मासं मानवैस्तथा।।

(वृहदनारदीयपुराण- अ०-६७)

बदरीनाथ को विशालापुरी के नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त है, वहाँ देवताओं, ऋषियों व तीर्थों का निवास स्थान है। इसलिए उसे विशाला कहा गया है।

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा।
ऋषिनां वसतिर्यत्र विशालस्तेन कथ्यते।।

वाराहपुराण में सूर्यवंश के राजा विशाल की कथा है। उसमें लिखा है कि राजा विशाल युद्ध में शत्रुओं से पराजित होने पर बड़े दुःखी हुए और हिमालय के गंधमादन पर्वत पर जाकर श्रीबदरीनाथ में तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् नर-नारायण राजा के सामने प्रकट होकर बोले राजन्! हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं। तुम कोई वर माँगो। यह वचन सुनकर राजा बोला- भगवन् पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझे वर देने वाले आप दोनों कौन हैं? नर बोले- तुम अपनी तपस्या से जिनको प्रसन्न करना चाहते हो हम उन्हीं विष्णु के पृथक्-पृथक् अवतार हैं।

इसके पश्चात् राजा ने उनकी पूजा-प्रार्थना कर विनीत भाव से कहा कि यदि आप मुझपर सच मुच प्रसन्न हैं तो मेरा छिना हुआ राज्य मुझे वापस दे दें।

भगवान् ने पहले तो उसे समझाया कि यहाँ तपस्या करने के बाद राज्य प्राप्ति की कामना करना व्यर्थ है; किन्तु उसके आग्रह पर प्रभु ने उसका राज्य उसको लौटा दिया और साथ में उससे यह भी कहा कि अब से तुम्हारा नाम भी हमारे नाम से जुड़ा रहेगा और यह पुरी तुम्हारे नाम पर विशालापुरी के नाम से विख्यात होगी। तभी से उसका नाम विशालापुरी पड़ा। साथ ही राजा विशाल बदरीनाथ से सम्बन्धित होकर उनका नाम बदरीविशाल भी हुआ।

बदरीनाथ नाम का रहस्य

संस्कृत में 'बदरी' बेर के पेड़ को कहते हैं। आज भारत के भाल हिमालय के गोद में जहाँ भगवान् बदरीनाथ का मन्दिर है, शास्त्रों के अनुसार यहीं कलियुग के प्राणियों को न दीखने वाला एक विशाल (वेर) वृक्ष है, जिस प्रकार प्रयागराज में अक्षयवट है। इस बदरीवृक्ष में सदैव लक्ष्मी जी का निवास रहता है। इसी कारण भगवान् लक्ष्मीपति नारायण को यह बदरीवृक्ष अतिप्रिय है। इस बदरीवृक्ष की शीतल छाया में भगवान् निरन्तर तपस्या में लीन रहते हैं। इस बदरीवृक्ष के नाम से ही इस क्षेत्र का नाम बदरीनाथ या बदरिकाश्रम हुआ।

यत्रतस्ते बदरीवृक्षो बहुगन्धफलान्वितः।
तस्मिन् स्थाने महाभाग आकल्पादास्थितो तपः।।

(वृ०ना०पु०)

आज यहाँ बदरीवृक्ष हो या न हो; किन्तु यह सम्भव है कि कभी यहाँ बदरीवृक्ष रहा होगा। पुराणों में अनेक स्थानों पर इस क्षेत्र के लिए बदरी वन कहा गया है। अतः निश्चय ही यहाँ बेर के वृक्ष रहे होंगे। जिनकी शीतल छाया में तपोधन ऋषियों के आश्रम थे। महाभारत (वनपर्व, अध्याय १४५) में नर-नारायण आश्रम और बदरीवृक्ष का वर्णन हुआ है।

पाण्डव जब गन्धमादन पर्वत शिखर की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें भगवान् नर-नारायण का आश्रम दिखाई दिया। जो नित्य फल-फूल देने वाले दिव्य वृक्षों से अलङ्कृत था। वहाँ उन्होंने गोल तने वाली विशाल और मनोरम बदरी भी देखी जो स्निग्ध छाया से युक्त, उत्तम शोभा से सम्पन्न तथा कोमल और स्निग्ध पत्रों से युक्त थी। बदरीनाथ भगवान् के दर्शन से मनुष्य संसार के कष्टों से सदा के लिए मुक्त होकर वैकुण्ठ चला जाता है। अतः बदरीनाथ भगवान् का दर्शन अवश्य करना चाहिए। पहले बदरीनाथ के दर्शन के लिए जाने वाले भक्तों को मार्ग में विशेष कष्ट होता था; परन्तु वर्तमान समय में हरिद्वार एवं ऋषिकेश से वाहन सुलभ हो गये हैं। वैशाख शुक्ल पक्ष अक्षय तृतीया से वहाँ दर्शन प्रारम्भ हो जाता है। स्कन्दपुराण में भी श्रीबदरीनाथ के चारों युगों में चार नामों का उल्लेख मिलता है। सत्ययुग में मुक्तिप्रदा, त्रेता में योगसिद्धिदा, द्वापर में विशाला और कलियुग में बदरिकाश्रम ।

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः।।

इससे स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड के तीर्थ अतिप्राचीन हैं और प्राचीन युग से ही देवताओं और मानवों द्वारा इनका सेवन होता रहा है।

●

पशुओं के रोग निवारण के उपाय

अर्जुनः फाल्गुनो विष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः।
विभत्सु विजयी पार्थः सव्यसाची धनंजयः।
कपिध्वजो गुडाकेशो गाण्डिवी कृष्णसारथीः।
एतान्यर्जुन नामानि गवां गोष्ठे च यो लिखेत्।
न तत्र पशुरोगादि शुभं शीधं प्रजायते।।

उत्तराखण्ड के पावन तीर्थ

हिमालय ऋषियों की तपोभूमि है। यह भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान आदि देशों की सीमाओं को लपेटता हुआ विशाल क्षेत्र में फैला है। इस फैलाव के एक विशिष्ट खण्ड 'उत्तराखण्ड' को हिमालय का हृदय माना जाता है। भारत के ही नहीं, विश्व भर के अध्यात्मवेत्ता इस क्षेत्र को ऋषियों का निवास स्थान मानते हैं। पूर्वकाल में उनके कार्य-कलाप अधिक स्पष्ट होते थे। उनके अधिकांश कार्य सूक्ष्म शरीरों के माध्यम से होते रहे हैं। आज भी उनकी सत्ता समाप्त नहीं हुई बल्कि सूक्ष्मीकृत रूप में विद्यमान है। भगवान् लोक-कल्याण के अगणित कार्य ऋषियों के माध्यम से ही कराते हैं। उन्हें स्थूल आँखों से प्रत्यक्ष भले ही न देखा जा सके; परन्तु सूक्ष्म संवेदनाओं के आधार पर अनुभव किया जा सकता है।

ऋषित्व प्राप्ति के उपयुक्त स्थूल, सूक्ष्म वातावरण हिमालय में ही है। इसीलिए आत्मशक्ति का आध्यात्मिक प्रकाश प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाने वाली तीर्थ यात्राओं में हिमालय की गरिमा सर्वोपरि है।

हरिद्वार

हरिद्वार उत्तराखण्ड का प्रवेश द्वार है। पाप परिष्कार और प्रायश्चित्त के लिए यह तीर्थ प्रसिद्ध है। यहाँ इन्द्र ने प्रायश्चित्त किया था। उत्तराखण्ड ऋषिक्षेत्र है। ऋषि-कृपा की प्राप्ति के लिए पवित्रता, निर्मलता, सुसंस्कारिता का होना आवश्यक है। मनुष्य से स्वभाववश, भूल से या अहङ्कारवश समाज के अन्य व्यक्तियों के सांस्कृतिक परम्पराओं की क्षति पहुँचती रहती है। उन्हें स्वीकार करना, आगे भूल न करने और हुई क्षति की पूर्ति तप पुरुषार्थ से करने की व्यवस्था प्रायश्चित्त विधान में है। व्यक्तिगत जीवन के कुसंस्कारों को ऐसे स्थल पर आकर हटाया जाता है। पितरों के प्रति कर्त्तव्यों की त्रुटियों की पूर्ति श्राद्ध द्वारा होती है। इन सबके लिए हरिद्वार प्रतीक केन्द्र माना जाता रहा है। कुम्भपर्व के अवसर पर इस क्षेत्र की गरिमा का कहना ही क्या है? यहाँ के दर्शनीय स्थल भीमगोड़ा, हरिकी पैड़ी, मानसी देवी मन्दिर, सप्तसरोवर, भारत-माता मन्दिर, कनखल आदि हैं।

हृषीकेश (ऋषिकेश)

हृषीकेश से उत्तराखण्ड के धामों की यात्रा प्रारम्भ होती है। यहाँ भरतजी ने साधना की थी। यहाँ आज भी भरत-मन्दिर है। उत्तराखण्ड के तीर्थ-यात्रियों के सत्सङ्ग के लिए यहाँ सूतशौनक-कथा वाचन-श्रवण की व्यवस्था विशेष रूप से रही है। हृषीकेश में यात्रियों के ठहरने तथा आध्यात्मिक लाभ उठाने की व्यवस्था सतत चलती आ रही है। यहाँ के श्रीवेङ्कटेश्वर मन्दिर, भरत मन्दिर आदि दर्शनीय स्थल हैं।

लक्ष्मण-झूला

गङ्गा किनारे का यह रमणीय क्षेत्र लक्ष्मण जी का साधना क्षेत्र रहा है। आज यहाँ अनेक आश्रम और मन्दिर बन गये हैं। उस समय गङ्गा पार करने के लिए झूलता हुआ पुल बना था। वह समयानुसार रूप बदलते हुए आज भी लक्ष्मण-झूला कहलाता है। यहीं महर्षि पिप्पलाद का आश्रम था। वे आहार विज्ञान के विशेषज्ञ थे। लक्ष्मण जी पर लङ्का युद्ध में कई अस्त्रों का प्रयोग हुआ था। औषधि चिकित्सा से उसका सामयिक उपचार भर हो गया था, किन्तु उनके स्वास्थ्य पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़े थे, वे महर्षि पिप्पलाद के मार्गदर्शन में आहार साधना से पूरी तरह दूर हो गये। उसी के साथ रामजी के धर्म राज्य स्थापना में सार्थक भूमिका निभाने योग्य तप शक्ति भी जागृत हो सकी। श्रद्धालु यात्री यहाँ आकर अत्यधिक लाभ उठाते हैं।

देव प्रयाग

देव प्रयाग में भागीरथी और अलकनन्दा का सङ्गम है। यहीं से 'गङ्गा' नाम से यह पुण्य प्रवाह आगे बढ़ता है। कथानक के अनुसार श्रीराम ने देव-प्रयाग, लक्ष्मण ने लक्ष्मण-झूला, भरतजी ने हृषीकेश तथा शत्रुघ्नजी ने मुनि की रेती क्षेत्र में तप-साधना की थी। सीताजी की साधना महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में चली। उसी धर्म साधना प्रक्रिया से धर्मराज्य स्थापित हुआ और लम्बे समय तक स्थिर रहा।

उत्तरकाशी

यह तीर्थ उत्तराखण्ड की काशी है। यहाँ गङ्गा उत्तर की ओर प्रवाहित होती हैं। वाराणसी की तरह यहाँ देव मन्दिर एवं घाट बने हुए हैं। यही नहीं वाराणसी की तरह यह विद्या का केन्द्र भी है। परशुराम के पिता महर्षि जमदग्नि का आरण्यक इसी क्षेत्र में था। तीर्थों में साधकों को वातावरण और ऋषि-सम्पर्क का लाभ देने के लिए आरण्यक स्थापित किये जाते थे। वहाँ अल्पकालीन साधनाएँ, संस्कार आदि कराने, बालकों के गुरुकुल, प्रौढ़ों के लिए वानप्रस्थ साधना प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था रहती थी। उत्तरा-खण्ड के आरण्यक में महर्षि जमदग्नि का आश्रम विशेष रूप से प्रख्यात था। उत्तरकाशी के कई स्थलों में आज भी विद्यादान की परम्परा यात्रियों को आश्चर्य-चकित करती है।

त्रियुगी नारायण

त्रियुगी नारायण मन्दिर के साथ यहाँ विष्णु कुण्ड आदि तीन कुण्ड हैं। एक यज्ञ कुण्ड में बहुत दिनों से अग्नि प्रज्वलित है। यहीं महर्षि याज्ञवल्क्य ने यज्ञ-विद्या पर शोध किया था, उसी की प्रतीक अग्नि वहाँ सुरक्षित है, पर यज्ञ-शोध वाली बात काल प्रभाव से विस्मरण में चली गयी है।

बदरीनाथ धाम

बदरीनाथ उत्तराखण्ड में भगवान् नारायण का धाम है। यहाँ नर-नारायण रूप में श्रीविष्णु विराजमान हैं। शास्त्रों के अनुसार नर-नारायण ने ही द्वापर में अर्जुन और श्रीकृष्ण रूप में प्रकट होकर पृथ्वी का भार उतारने का काम किया था। यहीं व्यास गुफा है। महर्षि व्यासजी ने महाभारत तथा पुराणों की रचना के लिए यही स्थान चुना था। उच्च स्तरीय कार्य बिखरे मन से नहीं होते। व्यासजी का शरीर स्थिर था, मात्र वाणी सक्रिय थी और गणेशजी की मात्र लेखनी सक्रिय थी, वे सतत मौन रहते थे। ऐसी योगस्थ स्थिति में ही समय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालने वाला पुराण-साहित्य रचा जा सका। पितरों के प्रीत्यर्थ पिण्डदान देने की परम्परा भी यहाँ है।

गङ्गोत्री

गङ्गोत्री महर्षि भगीरथ की तपस्थली भी है। उन्होंने यहीं पर गङ्गावतरण के लिए घोर तप किया था। इसीलिए गङ्गा को भागीरथी भी कहते हैं। पतित-पावनी गङ्गा जहाँ कोटि-कोटि श्रद्धालुओं को अन्त:करण की पवित्रता प्रदान करती हुई घोर पातकों से बचाती है, वहीं हरिद्वार से लेकर गङ्गासागर तक के क्षेत्र को अपने स्थूल अनुदानों से धन्य बनाती है।

यमुनोत्री

यमुनोत्री महर्षि परशुराम जी की एक तपस्थली रही है। जिस प्रकार गङ्गा-यमुना परस्पर पूरक हैं उसी प्रकार परशुराम जी और भगीरथ भी पूरक हैं। भगीरथ पवित्रता के प्रतीक हैं तो परशुराम प्रखरता के। ऋषिकल्प जीवन इन्हीं दो धाराओं के सङ्गम से बनता है। भगीरथ जी ने शान्ति और सद्भावना की साधना की थी और परशुराम जी ने रचनात्मक क्रान्ति का मोर्चा सम्भाला था। समाज की आदर्श संरचना में बाधक व्यक्तियों, वृत्तियों का उन्होंने दृढ़ता से उन्मूलन किया। प्राकृतिक सुषमा सम्बन्धित यह स्थल यात्रियों का मन मोह लेता है। पहले यहाँ की यात्रा दुर्गम थी; परन्तु वर्तमान में यात्रा की सुविधा उपलब्ध है।

माता-पिता की सेवा सुखद होती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अनेक प्रकार के लोग हैं, उनमें किससे कैसा व्यवहार करना चाहिए? इसका विवेक मानव को अवश्य होना चाहिए। यह विवेक धर्म से उत्पन्न होता है, धर्म उस कर्म को कहते हैं जिसके पालन करने से मानव का जीवन इस लोक में समुन्नत हो और शरीरान्त के बाद संसार के बन्धनों से छूटकर परमात्मा को प्राप्त कर ले। जैसे कि भौतिक दृष्टिकोण से राष्ट्र को समुन्नत बनाने के लिए राजनीति है वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को सुखमय बनाने के लिए धर्मनीति है। जैसे राजनीति की उपेक्षा करने पर राष्ट्र की स्थिति बिगड़ जाती है, वैसे ही धर्ममार्ग की अपेक्षा करने पर मनुष्य का जीवन दु:खमय हो जाता है। यह कलियुग है इस कलियुग में प्राय: मनुष्य आसुरी स्वभाव के हो रहे हैं। धर्ममार्ग से विचलित होकर दम्भ, कपट, कुतर्क, कदाचार आदि दुर्गुणों के शिकार बन रहे हैं। त्रिकालदर्शी सभी ऋषियों ने तथा सत्शास्त्रों ने कलि के दुर्गुण का वर्णन करते हुए ऐसा ही कहा है।

समाज में सबसे अन्तरङ्ग परिवार माता-पिता, पुत्र, पति-पत्नी तथा भाई होते हैं। माता-पिता के प्रति पुत्र के लिए निर्देश करते हुए वेद ने कहा है— ***'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'*** अर्थात् माता-पिता को देवता के समान समझे। सदा उनकी आज्ञा का पालन करे। उनके सामयिक सेवा करे। सदा उन्हें कष्टों से बचावे; परन्तु वर्तमान समय में माता-पिता विशेष दु:खी अपने पुत्रों से ही हैं। बारह वर्ष से अधिक अवस्था होने पर प्राय: पुत्र माता-पिता की आज्ञा पालन करना नहीं चाहता और न ही उनके प्रति प्रेम रखता है। उससे माता-पिता विशेष दु:खी रहते हैं। वे समस्या को लेकर सन्तों के पास जाते हैं, यहाँ पर सन्तों को विचार करना पड़ता है कि कौन-सा उपाय किया जाय जिससे पुत्र माता-पिता के आज्ञा का अनुसरण और उनकी सेवा करे तथा उनके अनुकूल चले।

यहाँ पर नारद का वचन स्मरणीय है। एक बार नारदजी कलियुग में इस भूतल पर घूम रहे थे। उन्होंने कलि के दोष से आक्रान्त होकर मनुष्यों को सर्वत्र गलत आचरण करते हुए देखा। सभी वर्ण तथा आश्रम के लोग धर्म के विपरीत आचरण कर रहे थे, उन्होंने कहा—

अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्यदूष्णम्।
अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटस्थितः।।

(भा०-१-७०)

अर्थात् कलियुग अधर्म का मित्र है। वह सबसे अधर्म ही कराना चाहता है। अत एव सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् युगधर्म समझकर सबके निकट रहते हुए भी सह रहे हैं। सन्त भी यही समझकर शान्ति के लिए कलिदोष दमन करने वाला भगवन्नाम सङ्कीर्तन का मार्ग सबों को बताते हैं। अगर दोनों शाम मनुष्य भगवन्नाम का सङ्कीर्तन प्रेमपूर्वक करे तो उससे कलि का दोष शान्त हो जाता है और लोगों में सद्बुद्धि उत्पन्न हो जाती है।

जो पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं तथा उन्हें कष्ट देते हैं, उन्हें यह विचार करना चाहिए कि वे भी पुत्रवान् बनेंगे और उनके पुत्र भी उन्हें कष्ट देंगे, तो उन्हें कैसा अनुभव होगा। प्रकृति का यह नियम है कि जो व्यक्ति अपने पूर्वजों के साथ जैसा व्यवहार करता है उसके वंशज भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। उस समय उन्हें सूझता है कि हमने अपने माता-पिता आदि बड़े लोगों के साथ गलत व्यवहार किया उसका परिणाम मुझे भोगना पड़ रहा है। अत: वह पूर्व से ही अपने व्यवहार तथा विचार को उत्तम बनाये रखे। जिससे उसे अपने पुत्रादि से कष्ट उठाना न

पड़े। इसके लिए हम मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के आचरण का अनुसरण करें। भगवान् श्रीराम अपने माता-पिता को प्रसन्न रखने के योग्य ही कर्म करते थे। एक बात स्मरणीय है कि जहाँ पिता की आज्ञा के विपरीत अगर माता की आज्ञा होती हो तो वहाँ पिता की आज्ञा का ही अनुसरण करना चाहिए। जैसे राजा दशरथ ने श्रीराम को वन जाने के लिए आदेश दिया था, उस समय कौसल्या ने कहा था कि मैं माता होने के नाते कहती हूँ कि तुम वन मत जाओ; परन्तु राम ने पिता की आज्ञा का ही पालन किया। यद्यपि ***'पितुः सद्गुणामाता'*** इस वचन के अनुसार पिता से माता सौ गुणा बड़ी होती है; परन्तु यह वचन सेवा के लिए है। माता-पिता–ये दोनों में माता प्रथम सेव्य होती हैं अर्थात् माता की प्रथम सेवा करे। आज्ञा पालन में पिता के वचन ही प्रथम पालनीय होता है।

अत एव श्रीराम कौसल्या की बात न मानकर पिता के वचन के अनुसार वन में चले गये। अगर कोई माता-पिता को कष्ट देता है और माता-पिता दुःखी होकर उसे शाप देते हैं, तो उसका फल पुत्र को भोगना पड़ता है। इसलिए पुत्र अपने माता-पिता को प्रसन्न रखे। माता-पिता की प्रसन्नता से पुत्र को सब प्रकार से लाभ होता है। वर्तमान में कलि का प्रभाव पति-पत्नी पर भी विशेष रूप से देखा जा रहा है। पत्नी का धर्म है पति की आज्ञा के अनुकूल चलना। पत्नी के लिए पति गुरु के समान पूज्य होते हैं; परन्तु शास्त्रीय ज्ञानाभाव के कारण पत्नी पति पर शासन कर रही है। यह पत्नी के लिए अधर्म पूर्ण कार्य है। पत्नी अपने पति को सेवा से प्रसन्न रखे। उससे पत्नी का सर्वविध लाभ होता है। भगवान् विष्णु ने दुर्वासा से कहा है कि मैं अपने भक्त के वस में कैसे हो जाता हूँ जैसे पति अपनी पत्नी की सेवा से बस में हो जाता है।

वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ।

(भागवत)

जो नारियाँ धर्म को मानकर देवों के पूजन में लगी रहती हैं, उन्हें पति की अनुकूलता पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए। तभी दाम्पत्य सुख प्राप्त होता है। भगवद्वचन के अनुसार भगवान् भी वैसी ही नारी पर प्रसन्न होते हैं। बड़ा भाई पिता के समान और छोटा भाई पुत्र के समान होता है; परन्तु वर्तमान में कलियुग ने भ्रातृप्रेम को भी विघटित कर दिया है। प्रायः सर्वत्र भ्रातृप्रेम का अभाव देखा जा रहा है। अर्थ ने सभी को अपने वश में कर लिया है। इसलिए सब प्रकार का प्रेम अर्थ में विलीन हो गया। इससे लोगों में सुख की जगह दुःख की ही उपलब्धि हो रही है। अतः भ्रातृप्रेम पर ध्यान रखकर कर्म करे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

●

श्रीमद्भगवद्गीता अवश्य पढ़े

इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रहीत है। यह साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्यवाणी है। भगवान् के अव्यक्त रूप से विश्वरूप तक की झाँकी गीता में मिलती है। यह भगवान् के अनन्त कल्याणमय गुणों तथा दिव्य विभूतियों का प्रत्यक्ष दर्शन कराती है। मानव धर्म के मूल तत्त्वों को समझा देने वाला गीता के समान विश्व में दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं हैं। यह एक पिण्ड (शरीर) में ही ब्रह्माण्ड की सभी तत्त्वों का दर्शन करा देती है। संसार के विभिन्न कष्टों से पीड़ित मानवों को आनन्दमय सागर में मिला देने की सामर्थ्य एक मात्र गीता में है। ब्रह्मतत्त्व, आत्मतत्त्व ब्रह्म प्राप्ति के साधन भक्ति एवं शरणगति का रहस्य सविस्तर गीता बताती है।

जप विधि

तत्त्व-द्रष्टा त्रिकालदर्शी ऋषियों ने मानवों के अनादिकाल से सञ्चित अन्त:करण के मलों को साफ करने के लिए मन्त्र जप का विधान किया है। हम मानव जगत् के अन्दर अपने वस्त्रों तथा शरीरों को साफ करने के लिए सोड़ा, साबुन आदि का प्रयोग करते हैं; परन्तु आत्मगत मलों को साफ करने के लिए मात्र शास्त्रों का बताया हुआ उपाय (साधन) ही काम कर सकता है। उपायों में मन्त्र जप सर्वोत्तम माना गया है। अत एव भगवान् कृष्ण ने ***'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'*** कहकर अपने को जप यज्ञ स्वरूप बतलाया है। मनु ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि मन्त्र जप से ही लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धि मिलती है।

जपेनैव तु संसिद्धेद् ब्राह्मणो नाऽत्र संशय: ।

अध्यात्मरामायण में 'मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते अर्थात् भगवान् श्रीराम कहते हैं कि साङ्गोपाङ्ग मन्त्र का जप सप्तम भक्ति है। पद्मपुराण में भव-बन्धन से मुक्ति के लिए सोलह प्रकार की भक्तियाँ बतलायी गई है। ***'अर्चनं च जपोध्यानं'*** कहकर जप को प्रधान स्थान दिया गया है। रामचरित मानस में शबरी के प्रति नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए श्रीराम ने कहा—

मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा ।
पञ्चम भजन सो वेद प्रकासा ।।

इस तरह सर्वत्र शास्त्रों के अवलोकन से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि अनादि काल से मोहवश किये गये दुष्कर्मों के द्वारा सञ्चित आत्मगत मलों के निवारण हेतु श्रीवैष्णवों को तुलसी या कमलाक्ष की माला पर मूल-मन्त्रादि का जप करना चाहिए। भगवद्मन्त्रों का जप रुद्राक्ष की माला पर निषिद्ध है। अत: न उसे धारण करें और न उस पर जप ही करें। शास्त्रों में जप तीन प्रकार के बताये गये हैं— वाचिक, उपांशु और मानस। तीनों प्रकार के जपों का विधान अलग-अलग है। वाणी से जप करने में दस गुणा फल, उपांशु (ओठ हिले; परन्तु दूसरे मनुष्य शब्द न सुन सके वह) जप करने में सौगुणा फल तथा एकाग्रतापूर्वक मन में जप करने में जिसमें जिह्वा भी न हिले, हजार गुणा फल होता है। प्रथम वाचिक जप, द्वितीय उपांशु और तृतीय मानस जप है। इन तीनों में मानस जप सर्वोत्तम है। जप करते समय माला को वस्त्र से छिपाकर जप करना चाहिए। मन्त्र जप के समय माला को तर्जनी तथा कनिष्ठा से स्पर्श न करें। न माला को अधिक डुलावें। प्राय: हाथ से भी स्पर्श न होने दें।

जपते समय यदि भूल या असावधानी से माला नीचे गिर पड़े तो १०८ बार अधिक जप करें। जप के समय मौन रहना चाहिए। मन्त्र प्रतिपाद्य देव और मन्त्राधिष्ठातृदेव के स्वरूप का ध्यान करते हुए जप करना चाहिए।

माला के अभाव में कभी-कभी अङ्गुलियों पर भी जप किया जा सकता है, जिसे कर माला कहते हैं। अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ करके नीचे के पर्व से होते हुए कनिष्ठा अङ्गुली के निम्न पर्व से जपते हुए ऊपर की ओर तर्जनी के पर्व से ऊपर की ओर होते हुए अनामिका के मध्य पर्व तक पहुँच जाय। मध्यमा अङ्गुली के नीचे दो पर्व पर अङ्गुली नहीं जानी चाहिए, न उसका उल्लङ्घन करे।

आरभ्यमानामिका मध्य पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद् दशसु पर्वसु ।।
मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितथं भवेत् ।
तं वे मैरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलङ्घ्यते ।।

अल्प समय होने पर १०८, १८ अथवा १० बार जप अवश्य कर लें। प्रात:काल मूलमन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का जप करने से रात्रि में मन, कर्म,

वचन से अज्ञात रूप में हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। मध्याह्न में जप करने से पञ्च महापातक तथा उपपातक नष्ट हो जाते हैं। अत एव महानारायण उपनिषद् का वचन है—

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति।
सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति।
तत्सायं प्रातरधीयानोऽपापो भवति।।
मध्यं दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः।
पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते ।।
सर्ववेदपारायणं पुण्यं लभते।

नारायणसायुज्यमवाप्नोति। श्रीमन्नारायण सायुज्यम वाप्नोति। ***'य एवं वेद'*** मूल मन्त्र जप करने से लौकिक विशेष फलों का भी निर्देश उपनिषद् में किया गया है। यथा—**'सर्वमायुरेति विन्दते प्राजापत्यं रायष्पोषं गोपत्यं ततोमृतत्वमश्नुते'।**

भाव यह है कि मूल मन्त्र का जप करने से आयु, वंश तथा धन की वृद्धि होती है और शरीरावसान के बाद श्रीभगवान् की सायुज्य मुक्ति मिलती है। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है—

किं तत्र बहुभिर्मन्त्रैः किं तत्र बहुभिर्व्रतैः।
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।

अर्थ यह है कि जब ***'ॐ नमो नारायणाय'*** यह वैदिक मन्त्र लौकिक तथा पारलौकिक फलों को देने में पूर्ण समर्थ है तो अनेक मन्त्रों और व्रतों से क्या लाभ? अर्थात् अन्य मन्त्रों तथा व्रतों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।

नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्तिवशवर्तिनी।
तथाऽपि नरके घोरे पतन्त्येतदद्भुतम्।।

नारायण यह शब्द है, जिह्वा अपने वश में है। फिर भी मनुष्य अपनी जिह्वा से नाम नहीं लेने के कारण नरक में जाता है। यह बड़ा आश्चर्य है; क्योंकि इतना सुलभ उपाय को भी वह न कर पाता है। सम्प्रदायानुसार गुरु परम्परा से अष्टाक्षर, षडक्षर, द्वादशाक्षर आदि मन्त्रों में से जो प्राप्त हो उसी का जप करे; परन्तु भगवद् मन्त्र होना चाहिए। चूँकि अन्य देवों के मन्त्र जप से लौकिक कुछ फल भले मिल जाय; परन्तु मोक्ष नहीं मिल सकता है। मोक्ष देने में समर्थ एक मात्र पूर्वोक्त भगवद् मन्त्र ही है।

●

बालक रक्षा विधि

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्र से हवन कर शुभ भस्म बना ले और उसे हाथ में लेकर अधोलिखित मन्त्र पढ़े पश्चात् उस भस्म को बच्चे के सम्पूर्ण शरीर में लगा दे

ॐ वासुदेवो जगन्नाथः पुतना तर्जनोहरिः। रक्षति त्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम्।।
कृष्ण रक्ष शिशु शङ्खमधुकैटभमर्दन। प्रातः संसव मध्याह्ने सायाह्नेषु च सन्धयोः।।
महानिशि सदा रक्ष कंसारिट निषुदन। यदगोरजः पिशाचांश्च ग्रहान्मातृ ग्रहानपि।।
बालग्रहान् विशेषेण छिन्धिन्निधा महाभयात्। त्राहि त्राहि हरे नित्यं त्वदरक्षा भूषितं शिशुम्।।

उपर्युक्त विधि से अभिभन्त्रित भस्म को शरीर में लगा देने से यह दोष, दृष्टि-दोष (नजर-गुना) रोग व्याधि से बालकों की भगवत्कृपा से रक्षा होती है। यह सर्वथा अनुभूत है।

गलत कर्म का परिणाम

'गताऽनुगतिको लोकः' अविवेकी पुरुष पुराणी लीक पर चलने वाली अन्धपरम्परा को भी प्रमाण मानते हैं।

लोग अनुकरणशील होते हैं, अच्छे लोगों को ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसके अनुकरण से हानि नहीं हो। अगर पूर्ववर्ती व्यक्ति कोई गलत मार्ग का अनुकरण करता है, तो उसके बाद वाले व्यक्ति भी उसी का अनुकरण करने लगते हैं। उससे पूर्ववर्ती व्यक्ति को कष्ट होता है।

किसी एक व्यक्ति के घर में एक नव विवाहिता वधू आयी। वह वधू विशेष माँ के प्यार में रही थी। सुस्वादु भोजन के प्रति उसकी विशेष रुचि थी। विवाह के बाद जिस दिन वह अपने पति के घर प्रवेश की, उसी दिन उसकी दृष्टि शिखर पर टंगा हुआ दूध के पात्र पर पड़ी। उसने दूध का पात्र उतार लिया और उसी दूध में खीर बनाकर अपने पति से कही कि इसे हम दोनों खा लें। आप अपनी माता-पिता को इसमें से नहीं दीजियेगा। इन दोनों को साधारण भोजन मिलेगा। पत्नी के वश में होने के कारण पति ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। दोनों मिलकर खीर खा गये। उसी प्रकार प्रतिदिन खीर, पुआ आदि सुस्वादु भोजन तैयार कर दोनों पति-पत्नी खाया करते थे। वृद्ध लोगों को साधारण भोजन मिलता था। उसकी सास पुत्र और वधू को सुस्वादु भोजन करते हुए देखकर कहती थी कि हे भगवान्! मेरी पुत्रवधू को भी मेरे समान ही परिस्थिति कब दिखाइयेगा।

समयानुसार उसकी भी पुत्रवधू घर में आ गयी। उसके मुख देखने के लिए ग्रामीण नारियाँ आयीं। वे मुख देखते समय परस्पर में ये बातें करतीं थीं कि अब परम्परा है कि जो नवीन वधू आती है, वह खीर, पुआ आदि सुस्वादु पदार्थ अपने पति के साथ खाती है और अपनी सास-श्वसुर को साधारण भोजन कराती है। अतः यह भी अब आज से ऐसा ही करेगी। नूतन वधू मुख दिखाती हुई अपने घर की परम्परा की बात समझ गयी। अतः वह भी सुस्वादु भोजन तैयार कर अपने पति से कही कि आइये हम दोनों भोजन करें। आप अपने माता-पिता को इसमें से नहीं दीजियेगा, उनलोगों को साधारण भोजन दिया जायेगा। यही हमारे घर की परम्परा है। हमलोग घर की परम्परा का पालन करेंगे। दोनों मिलकर सुस्वादु भोजन करने लगे और अपनी सास-श्वसुर को साधारण भोजन कराने लगी। उस समय उसकी सास कही कि तुम ऐसा क्यों करती हो? उसकी पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि यह घर की परम्परा आप ही चलायी हैं। इसका पालन करना हमारा धर्म है। हम इसे कैसे छोड़ दें। तब सास को समझ में आया कि मैं बहुत गलत की थी।

इसी प्रकार एक युवक पुरुष प्रतिदिन अपने माता-पिता को गाली तथा दण्डे से स्वागत करता था। उसके माता-पिता हृदय से दुःखी होकर युवा पुरुष को शाप देते थे, वे दोनों अपने युवा पुत्र को अपने समान ही गाली और दण्डे से स्वागत होते हुए देखना चाहते थे। माँ-बाप के साथ अभद्र व्यवहार करने वाला उस पुरुष का जब पुत्र हो गया तो वह प्रतिदिन देखता था कि मेरे पिताजी अपने माता-पिता को गाली और दण्डे से स्वागत करते हैं। वह समझा कि हमारे यहाँ के यह कुल-परम्परा है, अपने माता-पिता को गाली और दण्डा से स्वागत करना। अतः जब वह युवा हो गया, तब वह भी अपने माता-पिता को गाली और दण्डा से स्वागत कर कुल परम्परा के पालन में लग गया। उसके पिता ने अपने पुत्र से पूछा कि तुम ऐसा क्यों करते हो? पुत्र ने उत्तर दिया कि मैं बाल्यकाल यही से ही देख रहा हूँ कि आप अपने माता-पिता को प्रतिदिन गाली और दण्डा से स्वागत करते हैं। अतः मैंने समझा कि माता-पिता को गाली और दण्डा से स्वागत करना मेरा कुल धर्म है। इसलिए मैं भी उसे अपना लिया हूँ। उससे उनके पिता को यह ज्ञान हुआ कि गाली और दण्डा से जो अपने माता-पिता को स्वागत करते थे यह गलत था। आज उसका फल मुझे भी भोगना पड़ रहा है।

अतः नारी हो या पुरुष दोनों को भविष्य में होने वाले परिणाम पर ध्यान रखते हुए कर्म करना चाहिए। अपने से बड़े के प्रति मधुर वचन और सद्व्यवहार करें।

प्रेमपूर्वक समर्पित पत्रादि से भगवान् की शीघ्र प्रसन्नता

भगवान् समदर्शी एवं परम दयालु हैं वे सारे प्राणियों को समान रूप में देखते हैं। जगत् के सृजन, पालन और संहार उनकी लीला है। समस्त भोग उन्हें प्राप्त हैं, कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो उन्हें प्राप्त न हो। वे सत् सङ्कल्प और परमानन्द स्वरूप है। फिर भी भक्त द्वारा प्रेमपूर्वक समर्पित पत्र पुष्पादि को भगवान् समझते हैं कि मुझे मन की कल्पनाओं में भी न आ सकने वाली कोई परम प्रिय वस्तु मिल गयी है। भगवान् ने अपनी पूजा के सुलभ साधन में पत्र, पुष्प, फल और तोय (जल) इन चार वस्तु को ही कहा हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(गीता–९/२६)

परन्तु भगवान् ने कहा है कि 'भक्त्या' अर्थात् भक्ति पूर्वक जो पुष्पादि समर्पण करता है उसे मैं ग्रहण करता हूँ। पत्र पुष्पादि ये चार पदार्थ निर्धन हो या धनी सबके लिए सुलभ है। दूध, घी, अन्न आदि पदार्थ सबों के पास नहीं रह सकते हैं; परन्तु पत्र पुष्पादि सर्वत्र मिलते हैं। द्रौपदी ने भगवान् को पत्र ही दिया था, उसी से प्रसन्न होकर भगवान् जानलेवा कष्ट से द्रौपदी सहित पाण्डवों को बचा दिया। वह प्रसङ्ग इस प्रकार है—

एक दिन दुर्वासा जी दुर्योधन के पास आये। दुर्योधन यह जानता था कि दुर्वासा जी बड़े क्रोधी हैं। उनकी सेवा में कमी होने पर शाप भी दे सकते हैं। अतः वह विधिवत् उनकी सेवा करने लगा। दुर्वासा जी एक मास उसके पास रह गये। दुर्योधन सावधान रहकर उनकी सेवा करता रहा। दुर्योधन की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने कहा कि दुर्योधन मैं तुम्हारी सेवा से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। तुम वरदान माँगो। दुर्योधन ने कहा कि भगवन्! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो आप मुझे प्रसन्न होकर यह वरदान दीजिए कि—मेरे चचेरे भाई पाँचों पाण्डव द्रौपदी के साथ वन में रहते हैं। उनके यहाँ आप एक हजार शिष्यों के साथ एक दिन के लिए अतिथि बन जाएँ। आप उस समय उनके पास पहुँचे जब द्रौपदी भोजन करके बटुआ धोकर रख दे।

युधिष्ठिर ने सूर्य की आराधना करके एक बटुआ प्राप्त किया था, जिसकी विशेषता यह थी कि द्रौपदी उस बटुआ में भोजन तैयार कर लेती थी और जब तक द्रौपदी भोजन नहीं करती थी तब तक जितने भी अतिथि आवें, एक ही बटुआ के पाक से सभी अतिथि की सेवा हो जाती थी। द्रौपदी के भोजन कर लेने के बाद बटुआ में कुछ अन्न नहीं रह जाता था। अतः दुर्योधन ने दुर्वासा से एक हजार शिष्यों के साथ पाण्डवों के अतिथि बनने का जो वरदान माँगा उसका उद्देश्य यह था कि द्रौपदी के भोजन कर लेने के बाद जब दुर्वासा जी एक हजार शिष्यों के साथ उसके पास जायेंगे, तो उन्हें भोजन नहीं मिलेगा; क्योंकि पाण्डवों के पास अन्न सङ्ग्रहित नहीं है। अतः दुर्वासा जी भोजन न मिलने पर द्रौपदी सहित पाण्डवों को शाप देकर भस्म कर देंगे। पाण्डवों के मर जाने पर मेरा भविष्य का कंटक दूर हो जायेगा।

दुर्वासा जी ने दुर्योधन को एक हजार शिष्यों के साथ पाण्डवों का अतिथि बनने का वरदान दे दिया। तदनन्तर एक दिन महर्षि दुर्वासा इस बात का पता लगाकर कि पाण्डव लोग द्रौपदी सहित भोजन से निवृत्त होकर आराम कर रहे हैं उसी समय एक हजार शिष्यों के साथ दुर्वासा जी वन में पधार गये। युधिष्ठिर अतिथि को आते देख भाइयों

सहित उनके सम्मुख गये। उन्होंने अतिथि देवता को लाकर श्रेष्ठ आसन पर आदरपूर्वक बैठाया और प्रणाम किया। विधिपूर्वक पूजा करके कहा—भगवन्! अपना नित्य नियम पुरा करके भोजन के लिए पधारिये। यह सुनकर दुर्वासा मुनि अपने शिष्यों के साथ स्नान करने के लिए नदी में चले गये।

इसी समय द्रौपदी को अन्न के लिए चिन्ता हुई। तब मन ही मन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करके प्रार्थना करने लगी—

मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंस निषूदनम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यम्।।
वासुदेव जगन्नाथ पणतार्तिविनाशनम्।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्ययः।।

हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! हे देवकी नन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! चरणों में पड़े हुए दुखियों का दु:ख दूर करने वाले हे जगदीश्वर! तुम्हीं सम्पूर्ण जगत् के आत्मा हो। अविनाशी प्रभो! तुम्हीं इस विश्व की उत्पत्ति और संहार करने वाले हो। भगवान्! कौरव की सभा में दु:शासन के हाथ से जैसे तुमने मुझे बचाया था, उसी प्रकार इस वर्तमान सङ्कट से भी मेरा उद्धार करो। द्रौपदी के इस प्रकार स्तुति करने पर देवाधिदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल को यह मालूम हो गया कि द्रौपदी पर कोई सङ्कट आ गया है। फिर तो अपने लोक को छोड़कर तुरन्त वहाँ आ पहुँचे। भगवान् को आया देख द्रौपदी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उन्हें प्रणाम करके दुर्वासा मुनि के आने का सारा समाचार कह सुनाया। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने द्रौपदी से कहा—'कृष्णे! इस समय मुझे बड़ी भूख लगी है, उनकी यह बात सुनकर द्रौपदी को बड़ी लज्जा हुई'। वह बोली—भगवन्! सूर्यनारायण की दी हुई बटलोई से तभी तक भोजन मिलता है जब तक मैं भोजन न कर लूँ। आज तो मैं भी भोजन कर चुकी हूँ। अत: अब उसमें अन्न नहीं रह गया है। भगवान् ने द्रौपदी से कहा जा और बटलोई लाकर मुझे दिखा। इस प्रकार हठ करके भगवान् ने बटलोई मँगवायी। उसके गले में जरा सा साग पत्र लगा हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने लेकर खा लिया और द्रौपदी से कहा कि इस साग पत्र से सम्पूर्ण विश्व के आत्मा यज्ञभोक्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि तृप्त और सन्तुष्ट हों।

विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्।

इतना कहकर सबका क्लेश दूर करने वाले महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण सहदेव से बोले—तुम शीघ्र जाकर मुनियों को भोजन के लिये बुला लाओ। तब सहदेव जी ने नदी में स्नान करने के लिए गये हुए दुर्वासा आदि सब मुनियों को भोजन के निमित्त बुलाने के लिए गये। वे मुनिलोग उस समय जल में जप कर रहे थे। सहसा उन्हें पूर्ण तृप्ति का अनुभव हुआ, बार-बार अन्नरस से युक्त डकारें आने लगीं। यह देखकर वे जल से बाहर निकले और आपस में एक-दूसरे की ओर देखने लगे (सब की एक अवस्था हो रही थी)। वे सभी मुनि दुर्वासा की ओर देखकर बोले हमलोग युधिष्ठिर को रसोई बनवाने की आज्ञा देकर स्नान करने के लिए आये थे; परन्तु इस समय इतनी तृप्ति हो रही है कि कण्ठ तक अन्न भरा हुआ जान पड़ता है। अब हम कैसे भोजन करेंगे? हमने जो रसोई तैयार करवायी है। वह व्यर्थ होगी। कहीं ऐसा न हो कि पाण्डव क्रूर दृष्टि देखकर हमें भस्म कर दें।

परम बुद्धिमान् राजा अम्बरीष के प्रभाव को याद करके मैं उन भक्तजनों से सदा डरता रहता हूँ, जिन्होंने भगवान् श्रीहरि के चरणों का आश्रय ले रखा है। इसलिए पाण्डवों से बिना पूछे ही तुरन्त भाग चलो। गुरु दुर्वासा मुनि के ऐसा कहने पर सब पाण्डवों से भयभीत हो भाग गये। सहदेव जब नदी में उन लोगों को नहीं देखा तो वहाँ रहने वाले मुनियों के मुख से उनके भागने का समाचार सुनकर सहदेव युधिष्ठिर के पास लौट आये और

सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया।

पाण्डव सोचने लगे। उनकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर आदि अन्य सब पाण्डवों को प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा कि कुन्ती कुमारो! परम क्रोधी महर्षि दुर्वासा से आपलोगों पर सङ्कट आता जानकर द्रौपदी ने मेरा स्मरण किया था, इसीलिए मैं तुरन्त यहाँ आ पहुँचा। अब आपलोगों को दुर्वासा मुनि से तनिक भी भय नहीं है। जो लोग सदा धर्म में तत्पर रहते हैं, वे कभी कष्टों में नहीं पड़ते। भगवान् श्रीकृष्ण का यह कथन सुनकर द्रौपदी सहित पाण्डवों का चित्त स्वस्थ हुआ। उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी और वे भगवान् से बोले—आपको अपना सहायक और संरक्षक पाकर दुस्तर विपत्तियों से उसी प्रकार पार हुए हैं, जिस प्रकार महासागर में डुबते हुए मनुष्य जहाज का सहारा पाकर पार हो जाते हैं।

इस तरह पुष्प से गजेन्द्र पर, फल से शबरी पर और जल से रन्ति देव पर भगवान् प्रसन्न हुए हैं।

●

सत्यमेव जयते नानृतं

सत्येन पन्था विततो देवयानः। (मुण्डकोपनिषद्- २।१।६)

सत्य की विजय होती है, झूठ की नहीं। परमात्मा की प्राप्ति में सत्य ही साधन है। जगत् में दूसरे सर्वकार्यों में भी अन्ततः सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। जो लोग मिथ्या भाषण, दम्भ और कपट से उन्नति की आशा रखते हैं, वे अन्त में बूरी तरह से निराश होते हैं। मिथ्या भाषण और मिथ्या आचरणों में भी जो सत्य का आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग किसी अंश में सत्य मान लेते हैं उसी से कुछ क्षणिक लाभ सा हो जाता है; परन्तु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अन्त में सत्य सत्य ही रहता है और झूठ-झूठ ही, इसी से बुद्धिमान् पुरुष सत्य भाषण और सदाचार को ही अपनाते हैं। भगवान् नारायण समस्त भूतों के परम कारण कैसे हैं। सम्पूर्ण जगत् उनसे किस प्रकार उत्पन्न होता है, इसमें तीन दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं—

१. जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट में स्थित जाल को बाहर निकालकर फैलाती है और फिर उसे निगल जाती है उसी प्रकार नारायण अपने अन्दर सूक्ष्मरूप से लीन हुए जड़-चेतन रूप जगत् को सृष्टि के आरम्भ में अनेक प्रकार से उत्पन्न करके फैलाते हैं और प्रलयकाल में पुनः उसे अपने में लीन कर लेते हैं।

२. जिस प्रकार पृथ्वी में जैसे जैसे अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि औषधियों के बीज पड़ते हैं, उसी प्रकार भिन्न भिन्न औषधियाँ पृथ्वी से उत्पन्न हो जाती है उसमें पृथ्वी का कोई पक्षपात नहीं है, वैसे ही जीवों के विभिन्न कर्मरूप बीजों के अनुसार ही भगवान् उनको भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न करते हैं। अतः परमात्मा में किसी प्रकार की विषमता और निर्दयता का दोष नहीं है।

३. जिस प्रकार मनुष्यादि शरीर में केश, रोएँ और मुख अपने आप उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार नारायण से यह जगत् स्वभाव से ही समय पर उत्पन्न होकर और विस्तृत हो जाता है। इसके लिए भगवान् को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

सुदुराचार पुरुष पर बदरीनारायण जी की कृपा

जो पुरुष अपने कर्त्तव्य कर्म को त्यागकर निषिद्ध कर्म का पालनरूप दुष्ट आचरण करता है, उस पुरुष को सुदुराचारी कहा गया है। अगर सुदुराचार व्यक्ति भी अनन्य भाव से भगवान् की शरण में आ जाता है तो भगवान् उस पर कृपा करके उसे अपना लेते हैं। यह प्रभु का स्वभाव है। चाहे वह देव, दानव या मानव हो–भगवान् सभी पर कृपा करते हैं।

एक दानव था, वह पिशाच का काम करता था, उसका नाम घण्टाकर्ण था। वह शङ्कर जी का अनन्य भक्त था। वह सदा भगवान् विष्णु की निन्दा करता रहता था। घण्टाकर्ण अपने कानों में घण्टा बाँधकर घूमता रहता था। उसे कानों में घण्टा बाँधने का उद्देश्य था कि विष्णु का नाम कभी कानों में न आ जाय। जब कोई विष्णु का नाम लेता था तब उस समय वह घण्टा बजा देता था।

सततं दूषयन् विष्णुं घण्टामाबध्य कर्णयोः ।
मम न प्रविशेन्नाम विष्णोरिति विचिन्तयन् ।।

(हरिवंश, भविष्यपर्व–२६)

घण्टाकर्ण एक बार कैलास पर शङ्कर जी के पास गया। उसने विधिवत् शङ्कर जी का पूजन कर उनका स्तवन किया। शङ्कर जी प्रसन्न होकर घण्टाकर्ण से कहे कि तुम कोई वर माँगो। घण्टाकर्ण ने उनसे मुक्ति का वरदान माँगा। शङ्कर जी ने कहा कि मुक्ति देने वाले केवल विष्णु हैं—

मुक्तिं प्रार्थयमानं मां पुनराह त्रिलोचनः ।
मुक्ति प्रदाता सर्वेषां विष्णुरेव न संशयः ।।

(हरिवंश, भविष्यपर्व–३०)

अतः तुम बदरीतीर्थ में नर-नारायण के आश्रम में जाओ और वहाँ आराधना करके गोविन्द भगवान् से मोक्ष प्राप्त करो। घण्टाकर्ण शङ्कर जी की बात मानकर वह गरुडध्वज भगवान् गोविन्द का महत्त्व समझा। वह मुक्ति के लिए प्रार्थना करने बदरिकाश्रम आया। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका से गरुड़ पर चढ़कर बदरिकाश्रम आये हुए थे। भगवान् वहाँ देव एवं ऋषियों से पूजित होकर समाधिस्थ हो गये। उसी समय दो महाभयङ्कर पिशाच आये। वे मांस खाते और रक्त पीते हुए दिखायी पड़ते थे। वे अपने शूलों में नरमुण्ड धारण किये हुए थे। उनके साथ अनेक राक्षस मसाल जलाए हुए थे। कुत्तों का झूण्ड भी वे साथ में लिए हुए थे। विशेष कोलाहल हो रहा था। वे बोलते हुए आये कि कृष्ण कहाँ हैं? भगवान् विष्णु का दर्शन कब होगा? वे कहाँ हैं? वे सब भगवान् के अनेक नामों द्वारा कीर्तन कर रहे थे। भगवान् ने दो पिशाचों को देखा। उन्होंने उनसे परिचय पूछा—घण्टाकर्ण ने कहा कि मेरा नाम घण्टाकर्ण है। यह दूसरा मेरा भाई है। हम आप के पास मुक्ति के लिए आये हैं। हमें शङ्कर जी ने भेजा है। तदनन्तर उसने भगवान् का विशेष स्तवन किया। घण्टाकर्ण भगवान् के स्वरूप का ध्यान करते हुए बैठ गया। उसकी समाधि लग गयी। उस अवस्था में भगवान् का दिव्य स्वरूप घण्टाकर्ण को दर्शन में आया। उसने भगवान् की स्तुति की।

तदनन्तर घण्टाकर्ण विचार किया कि भगवान् के पास, गुरु के पास और राजा के पास ***'रिक्तहस्तो न गच्छेत्'*** अर्थात् खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। प्रथम भगवान् के पास आये हैं तो इन्हें कुछ उपहार में दूँ। वह मांसाहारी था। समझा कि ब्राह्मण का मांस सबसे उत्तम होता है, अतः एक ब्राह्मण को मारकर भगवान् को समर्पण किया और कहा कि यदि दोष नहीं हैं तो आप इसे ग्रहण करें।

नव सुसंस्कृतं भक्ष्यं ब्रह्मण्यं शवमुत्तमम् ।
अस्माकं पिशिताशानं शास्त्रेनियतमेव हि ।
तस्माद् गृहाण भगवान् यदि दोषो न विद्यते ।

भगवान् श्रीकृष्ण उस घण्टाकर्ण पर बहुत

प्रसन्न हुए। उन्होंने घण्टाकर्ण से कहा कि इस मांस का उपयोग व्यर्थ है। तुम जिस ब्राह्मण शव को उत्तम बता रहे हो, यह मुझे छूने योग्य भी नहीं है। धर्म की अभिलाषा रखने वाले जीवों के लिए ब्राह्मण सर्वथा पूजनीय हैं। ब्राह्मणों की हिंसा कदापि नहीं करना चाहिए। उससे नरक मिलता है। अत: यह हमारे लिए सर्वथा अस्पृश्य है। मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे नामों के निरन्तर कीर्तन करने से तुम्हारा अन्त:करण शुद्ध हो गया है। भगवान् ने अपने हाथों से उस पिशाच को स्पर्श कर दिया। उससे वह पापों से मुक्त होकर दिव्य रूप धारण कर लिया। भगवान् ने उससे कहा कि जब तक स्वर्ग में वर्तमान इन्द्र रहेंगे तब तक तुम स्वर्ग में वास करोगे। अत: तुम स्वर्ग में रहो। इस इन्द्र के बदल जाने पर तुम स्वर्ग से ऊपर मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे। तुम्हारा भाई भी स्वर्गीय सुख का अनुभव करेगा। अन्त में घण्टाकर्ण भगवान् से अविचल भक्ति माँगा। भगवान् ने कहा—ऐसा ही होगा। घण्टाकर्ण अपने भाई के साथ स्वर्ग चला गया।

तदनन्तर भगवान् ने मृत ब्राह्मण को जीवित कर दिया। ब्राह्मण वहाँ से चला गया। इस प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि मुक्ति देने का अधिकार एक मात्र भगवान् विष्णु को ही है। भगवान् विष्णु ही श्रीराम, श्रीकृष्ण रूप में अवतार लिये हैं। अत: उन अवतारों में भी भक्तों को मुक्ति प्रदान किये हैं। महान् से महान् पापी भी शुद्ध भाव से भगवान् की शरण में आने पर मुक्त हो जाता है।

●

शीघ्र विवाह हेतु

देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि।
विवाहं भाग्यम् आरोग्यं शीघ्र लाभं च देहि मे।।

जपविधि—इस मंत्र को प्रतिदिन स्नान के बाद तुलसी के समीप बैठकर १०८ बार जपना चाहिए। जप के बाद किसी बर्तन में एक पाव गाय का दूध लेकर दाहिने हाथ में रखे तथा बायें हाथ में एक पाव पानी रखे, दोनों को लिये हुए तुलसी की प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा के समय ऊपर लिखा मन्त्र पढ़ते रहे। परिक्रमा पूरी होने पर दोनों हाथों के दूध एवं पानी से एक बार सूर्य को अर्ध्य देवे। इस तरह १२बार करना चाहिए। इक्कीस दिनों तक यह विधि करने पर कन्या का विवाह शीघ्र होता है।

तुलसी पूजन

तुलसी में दीप दिखलाने वाले, भक्ति-पूर्वक तुलसी की सेवा करने वाले में को आयु, यश, बल तथा धन की भी वृद्धि होती है और राहु, शनि, मंगल जैसे क्रूर ग्रहों से बचाव होता है। यात्रा के समय तुलसी के दर्शन से यात्रा सफल होती है इस प्रकार तुलसी पूजन से प्राणी ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों सुखों का भाजन बनता है। अत: पुत्र, आरोग्य सौभाग्य आदि का मनोरथ रखनेवाली नारियाँ तुलसी जी में जल दे तथा सायंकाल दीप जलाकर निम्नलिखित मन्त्र से प्रार्थना करें—

सौभाग्यं सन्ततिं देहि धनं धान्यं च मे सदा।
आरोग्यं शोकसमनं कुरु मे माधवप्रिये।।

भगवदुपासना (मानसपूजा)

जगत् में चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में मानव शरीर सर्वोत्तम है। यह श्रीभगवान् की कृपा से मिलता है। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त सभी शरीर कर्मानुसार कर्म फल भोगने के लिए मिलते हैं।

अन्य शरीरों का प्रधान कारण कर्म है और मनुष्य शरीर प्राप्त होने में प्रधान ईश्वर की कृपा है। समस्त शास्त्रों तथा ऋषियों का यही सिद्धान्त है। भोग का योग सभी योनियों में मिलता है, परन्तु ईश्वर का भोग मनुष्य शरीर से ही सम्भव है। अत: ऋषि वचन है कि- **''विचित्रादेहसम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम्''** मानव शरीर पाकर जो केवल सांसारिक विषयों से ही योग बनाये रहता है, वह पशु के समान माना गया है। प्रभु ने यह शरीर दिया है, अत: स्वस्वरूप ज्ञानपूर्वक ब्रह्म की उपासना अवश्य करनी चाहिए, वे ही जन्म पालन आदि करनेवाले हैं। अत एव उपनिषद् वचन है कि- **'जज्जन्निति शान्त उपासीत्'** अर्थात् परमात्मा से जन्म, पालन तथा संहार काम होते हैं। अत: उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिए। श्रीमद्भागवत स्कन्द२ अध्याय ३ में कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना बतलायी गयी है, जिसका फल केवल लौकिक है; परन्तु भगवान् की पूजा के सम्बन्ध में कहा गया है कि जगत् में धन, स्त्री, पुत्र पशु आरोग्य, धर्म आदि की चाह से या मोक्ष की चाह से अथवा किसी चीज की चाह न होने पर भी प्रेमपूर्वक भगवान् की पूजा अवश्य करे।

अकाम: सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी:।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

पूर्ण विश्वास पूर्वक ईश्वर की उपासना अवश्य करे। भगवान् की पूजा के लिए प्रधान आधार मूर्ति है। विश्व कल्याण के लिये वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य आदि विशेष गुणों के कारण व्यापक होते हुए श्रीमन्नारायण भगवान् अर्चा (प्रतिमा) रूप धारण करते हैं। अर्चारूप में भगवान् सर्वदेव, सर्वकाल और सर्वव्यक्ति के लिए सुलभ हो जाते हैं। अत एव पद्मपुराण में अर्चा (प्रतिमा) की सर्वाधिक विशेषता बतलायी गयी है। यथा-

भारतेऽस्मिन् महावर्षे नित्यं सन्निहितो हरि:।
सर्वावस्थासु सौलभ्यमर्चायां विन्दते जनै:।।

अर्थात् इस भारत वर्ष में सर्वदा निकट रहते हुए नारायण की अर्चा (प्रतिमा) सुलभता से लोग प्राप्त करते हैं।

''जम्बुद्वीपे महापुण्ये वर्षे वै भारते शुभे।
अर्चायां सन्निधि: विष्णोर्नेतरेषु कदाचन''।।

अर्थ—जम्बुद्वीप के सुन्दर भारतवर्ष में अर्चा (प्रतिमा) में भगवान् विष्णु की सन्निधि रहती है। अर्चा (प्रतिमा) दो प्रकार की होती है स्वयं व्यक्त तथा मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठापित। स्वयं व्यक्त का अर्थ है—मूर्ति (प्रतिमा) रूप में श्रीभगवान् को स्वयं प्रकट हो जाना। अनेक दिव्य देशों में श्रीभगवान् प्रतिमा रूप में प्रकट हो गये। शालग्राम मूर्ति में स्वयं व्यक्त भगवान् सर्वाधिक भक्तों के लिए सुलभ हैं। भगवान् की पूजा के लिए स्वयं व्यक्त भगवान् की मूर्तियों में आवाहन विसर्जन नहीं होता है। मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा जिन मूर्तियों में की जाती है, वे मूर्तियाँ आठ प्रकार की होती हैं—पाषाण, काष्ठ, धातु, मिट्टी, चन्दनादि की लेपमयी, चित्रमयी, बालूकामयी, मनोमयी और मणिमयी।

पाषाण आदि की बनी मूर्तियों के दो भेद हैं– चल और अचल। अचलमूर्ति में एक ही बार प्राण प्रतिष्ठा हो जाती है। प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं किये जाते हैं। चल प्रतिमा के सम्बन्ध में वैकल्पिक व्यवस्था है, आवाहन करे या न करे। बालु की मूर्ति (प्रतिमा) में प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन करना चाहिए। मिट्टी और चन्दन की

लेपमयी (फोटो) प्रतिमाओं को स्नान न करावे, केवल मार्जन करे। प्रतिमा पूजन से जब निर्मल अन्त:करण हो जाय तथा भगवान् का स्वरूप हृदय में आ जाय तो उस स्वरूप की उपासना हृदय में भी पूजा की समस्त सामग्रियों से भावनापूर्वक उपासना की जा सकती है। अत एव श्रीव्यासजी ने श्रीमद्भागवत में लिखा है कि-'' **अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धौपचारकैः''।** अर्थात् यथासम्भव पूजन सामग्रियों के द्वारा अर्चामूर्ति में या हृदय में भगवान् की पूजा करे। **महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः।''** इस वचन के अनुसार भगवान् की जो मूर्ति (श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीवेंकटेश, श्रीरङ्गनाथ, श्रीवद्रीनारायण, श्रीवरदराज, श्रीराधाकृष्ण श्रीसीताराम आदि उन्हीं रूपों में) प्रिय लगे। (अभीष्ट हो) उस स्वरूप को हृदय में बैठाकर ''**मूलमन्त्रेण चार्चयेत्**'' इस उक्ति के अनुसार मूलमन्त्र से पूजन करे।

हृदय में मूर्ति बैठाने का प्रकार-

हृदय प्रदेश में प्रथम इस प्रकार चिन्तन करे- भगवान् हमारे हृदय में कमलासन पर बैठे हुए हैं । उनकी चार भूजायें हैं। ऊपर के दायें हाथ में चक्र बायें में शंख और नीचे के दाहिने हाथ में गदा तथा बाये में पद्म धारण किये हुए हैं। उनके कमल के समान विशाल दोनों नेत्र हैं। पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओं में श्रेष्ठ रत्नों के वाजुवन्द शोभायमान है। शिर पर बड़ी ही सुन्दर मुकुट तथा कानों में कुण्डल शोभायमान हो रहे हैं। उनके हृदय पर श्रीवत्स का चिहन है। गले मैं कौस्तुभमणि अपने अमित शोभाओं के साथ लटक रही है। वक्षस्थल पर वनमाला विराज रही है। वे कमर में करधनी, चरणों में नूपुर, हाथों में कङ्कण आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके शिर पर घुँघराले काले बाल हैं। उनका मुखकमल मन्दमन्द मुस्कान से खिल रहा है। उनकी दाहिनी ओर दिव्य आभूषणों से अलंकृत अपूर्व सौन्दर्य की निधि जगन्माता श्रीलक्ष्मी जी चितवन तथा भौंहों के द्वारा भक्तजनों पर अनन्त अनुग्रह की वर्षा कर रही हैं। इसी दिव्य स्वरूप का पूजन करे, जिसका प्रकार निम्नलिखित है-

पूजन की सारी सामग्रियों को क्रमश: मन से समर्पण करते जाय। प्रथम आवाहन की जगह चरणों में मानसिक तुलसी समर्पण करे। मखमल वस्त्र का सिंहासन समर्पण करे। पञ्चकटोरी में सुगन्धित पदोर्थों तुलसी फूल, लवङ्ग, इलायची से मिश्रित जल देकर उसे सुगन्धित कर ले और उसमें विरजा नदी के जल की भावना करे तथा उन्हें हाथ में अर्ध्य, पाद्य, आचमन तथा स्नानीय समर्पण करे क्रमश: पीताम्बर वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, उत्तम प्रकार के नैवेद्य (मक्खन, मिश्री, लड्डू, पेड़ा सामयिक फल जैसे सेव, आम, अमरूद, केला, नारंगी इत्यादि) अर्पित करे। नैवेद्य के अन्त में आचमन करावे, उसके पश्चात् मुख शुद्ध्यर्थ लवंग इलायची युक्त पानसुपारी समर्पण करे। धृतबत्ती से निराजन कर पुन: कर्पूर की आरती करे। इस क्रम में मन से ही मङ्गलाशासन श्लोक का पाठ भी करे। इसके अनन्तर प्रभुपादारविन्दों में केशवादि द्वादश नामों से तुलसी पुष्प समर्पण करे। अन्त में पूजन-विधि में हुई त्रुटि मार्जन हेतु क्षमा प्रार्थना कर दास भाव रखते हुए प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग प्रणाम करे। ये सारी उपर्युक्त क्रियायें मानसिक ही करे। ''आँव छाँह तर मानस पूजा'' यह मानसकार की पङ्क्ति भी मानस पूजा की ओर ध्यान आकृष्ट कर रही है।

●

धन प्राप्ति मन्त्र

अश्वदायि च गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे लभतां देवी सर्वकामांश्च देहि मे।।

इस मंत्र को प्रतिदिन स्नान के बाद कमलाक्ष की माला पर १०८ बार जप करे। इस मन्त्र को सविधि पूर्वक जप करने से धन की प्राप्ति होती है।

गुरु-शिष्य संवाद

शिष्य—गुरुदेव! मुझे यह ज्ञात हुआ है कि २०१० के अप्रैल में हरिद्वार में महाकुम्भ पर्व योग होने जा रहा है। महाकुम्भ पर्व क्या है?

गुरुजी—सुनो जी! समुद्र-मन्थन से चौदह रत्न निकले थे। उनमें चौदहवाँ रत्न अमृतपूर्ण कुम्भ था। देवों और दानवों ने समुद्र-मन्थन किया था। अमृत कुम्भ प्रकट होने पर देवों और दानवों के बीच कुम्भ को प्राप्त करने के लिए बारह दिनों तक युद्ध होता रहा। ये बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष के बराबर होते हैं। इस अवधि में इन्द्रपुत्र जयन्त ने कलश को छिपाने के लिए बारह स्थानों पर रखा। जिनमें आठ स्थान स्वर्ग में हैं और चार पृथ्वी पर– हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक। इन्हीं चार स्थानों पर अमृत घट रखा गया था। उस अमृत की कुछ बूँदे छलक गयी थी, अत: इन्हीं स्थानों में हर बारहवें वर्ष कुम्भपर्व मनाया जाने लगा।

शिष्य—गुरुदेव! इन स्थानों में कब-कब कुम्भ-महापर्व होता है?

गुरुजी—देवगुरु वृहस्पति, सूर्य तथा चन्द्रमा ने उक्त बारह दिनों में अलग-अलग स्थितियों में कुम्भ की रक्षा की थी। अत: वृहस्पति सूर्य और चन्द्र की विशिष्ट स्थितियाँ ही विभिन्न स्थलों पर कुम्भ का योग लाती है।

(१) वृषराशि पर वृहस्पति और सूर्य के मकरस्थ होने पर प्रयाग में। (२) गुरु के सिंहस्थ तथा सूर्य-चन्द्र के मेषस्थ होने पर उज्जैन में। (३) वृहस्पति, सूर्य और चन्द्र–इन तीनों के सिंहस्थ होने पर नासिक में और (४) मेष के सूर्य तथा कुम्भराशि के वृहस्पति होने पर गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में कुम्भपर्व का योग होता है।

शिष्य—इस वर्ष २०१० में कुम्भ कैसे और कब हो रहा है?

गुरुजी—***'पद्मिनी नायके मेषे कुम्भराशे गते गुरौ गङ्गाद्वारे भवेद्योग:'*** इस प्रमाण के अनुसार शुद्धवैशाख कृष्ण अमावस्या १४ अप्रैल २०१०ई० को मेषस्थ सूर्य और कुम्भ राशिस्थ वृहस्पति का योग होने से हरिद्वार में कुम्भ महापर्वयोग होने जा रहा है। जो लगभग एक मास तक रहेगा। उक्त अवसर पर स्नान, जप, होम और दान करने से मनुष्य सदा के लिए कष्टों से मुक्त हो जाता है।

कुम्भराशि गते जीवे तद्दिने मेषगो रवि: ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम् ।।

शिष्य—गुरुदेव! कुम्भयोग होने पर हरिद्वार में कहाँ-कहाँ स्नान करते हैं?

गुरुजी—हरिद्वार में गङ्गाजी में सर्वत्र स्नान किया जा सकता है; परन्तु वहाँ विशेष लोग हरकिपैड़ी पर स्नान करते हैं।

शिष्य—गुरुदेव! हरिद्वार में दर्शनीय स्थल कौन-कौन है?

गुरुजी—भीमगोड़ा, हरिकीपैड़ी, मनसादेवी मन्दिर, सप्तसरोवर, भारतमाता मन्दिर, कनखल आदि स्थल विशेष दर्शनीय है।

शिष्य—गुरुदेव! मैंने सुना है कि बदरिकाश्रम के लिए वहीं से यात्रा होती है, इसलिए उसे हरिद्वार कहते हैं। उस बदरिकाश्रम और उस क्षेत्र के तीर्थों की दूरी कितनी है।

गुरुजी—बदरीनाथ धाम—३२० किलोमीटर
यमुनोत्तरी—२५१ किलोमीटर
ऋषिकेश—२४ किलोमीटर
जोशीमठ—२७४ किलोमीटर
केदारनाथ—२५० किलोमीटर
गङ्गोत्तरी—२८० किलोमीटर
देवप्रयाग—९४ किलोमीटर
कर्णप्रयाग—२२२ किलोमीटर

दैवी गुण का पालन ही मानवता है।

मानवता ही मानव-जीवन का वास्तविक सौन्दर्य है। सुगन्ध रहित सुमन तथा नवनीत रहित स्वच्छ-वर्ण दुग्ध का जिस प्रकार कोई महत्व नहीं समझा जाता, उसी प्रकार मानवता के विशिष्ट गुणों के अभाव में मानव जीवन की सार्थकता सिद्ध नहीं होती। परमात्मा ने अपनी उत्कृष्ट कृति की पूर्णता का माध्यम मनुष्य को बनाया है। साथ ही उसे विवेक, बुद्धि संयम और शक्तियों का अतुल भण्डार, आसुरी तत्वों से निरन्तर संघर्ष करने का पौरुष भी प्रदान किया है। दुर्भाग्यवश मनुष्य ईश्वर प्रदत्त शक्तियों का दुरुपयोग करता है और मानवता जैसी उच्चतम श्रेणी से पतित होकर पाशविक श्रेणी में पहुँच जाता है। जिस मानव हृदय में दया, दान, करुणा, उदारता के भाव होते हैं तथा जिससे प्रेरित हो अन्य मानव भी नि:स्वार्थ सेवा-भाव एवं कर्तव्यों की ओर उन्मुख होते हैं, सच्चा मानव वही है।

मानव की पूर्णता ही देवत्व प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है। मानव आत्मा में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की जितनी अधिकता होगी वह मानवता के उतने ही निकट होगा। ईश्वर का दिव्य अंश हमारे शरीर में आत्मा रूप में विराजमान है। वही आत्मस्थित दिव्य ज्योति हमारे अन्त:करण में त्याग प्रेम, सत्य, क्षमा, दया और परोपकारिता से गुणों की सृष्टि एवं संचालन करती हैं। ये सद्गुण ही मानवता के आधारभूत स्तम्भ हैं।

योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता के १६ वें अध्याय में मानवता के उत्तम गुणों का वर्णन दैवी-सम्पदा नाम से किया है—

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

(गीता-१६।१-३)

मन में भय का अभाव, अन्त:करण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्वज्ञान के लिये ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ सात्विकदान, इन्द्रियों का दमन, भगवत्पूजा पूर्वक उत्तम कर्मों का आचरण, वेद शास्त्रों के पठन-पाठन पूर्वक भगवन्नाम और गुण का कीर्तन, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट एवं प्रतिकूलताओं का सहन करना शरीर और इन्द्रियों सहित अन्त:करण की सरलता, मन-वाणी-शरीर से कभी किसी को कष्ट न पहँचाना, यथार्थ और प्रिय भाषण करना, अपना अपकार करने वालों पर भी क्रोधित न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग चित्त में चञ्चलता का अभाव, किसी की निन्दा न करना, प्राणिमात्र पर नि:स्वार्थ दया, विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना, मन-वाणी-कर्म और स्वभाव की कोमलता, लोक और शास्त्र विरुद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव, अन्याय युक्त आचरणों से रोककर उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली शाक्ति, अपकारी के दोष को क्षमा करके उसका भी शुभचिन्तन, विपत्तिकाल में भी साहस रखना, आन्तरिक और बाहर पवित्रता, किसी भी प्राणी के प्रति शत्रुभाव न रखना, अपने में पूज्यता के अभिभाव का अभाव। हे अर्जुन! ये सब दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

यथार्थ में धर्म और मानवता समान अर्थ व्यक्त करने वाले पर्यायवाची शब्द हैं। धर्म की पूर्णता मानवता से और मानवता की महत्ता धर्म के बिना संभव नहीं है।

●

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी का सिद्धान्त एवम् प्रेम

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

पूज्यपाद श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी शेषावतार थे। ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्ध में उनका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है। उन्होंने उपनिषद्गीता और ब्रह्मसूत्र की व्याख्या कर सिद्ध कर दिया है कि जीव ब्रह्म का दास है और माया नश्वर नहीं बल्कि परिणामी है। ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् उभयविभूति-नायक मायातीत स्वतन्त्र है। ब्रह्म नारायण नाम से प्रसिद्ध है।

इनके सम्प्रदाय की परम्परा में सर्वप्रथम आचार्य नारायण माने जाते हैं। उन्होंने निजस्वरूपा शक्ति श्रीमहालक्ष्मी जी को श्रीमन्नाराणमन्त्र का उपदेश दिया, उनसे यह उपदेश विष्वक्सेन जी को प्राप्त हुआ और आगे नाथमुनि आदि की परम्परा में वही उपदेश श्रीयामुनाचार्य जी को प्राप्त हुआ। ये ही यामुनाचार्यजी श्रीरामानुज के परम गुरु थे। इस प्रकार इस विशिष्टाद्वैत भक्तिसिद्धान्त में श्रीनाथमुनि यामुनाचार्य तथा रामानुजाचार्य तीन आचार्य विशेष प्रसिद्ध हुए जो मुनित्रय कहलाते हैं। यामुनाचार्य जी आलवन्दार भी कहलाते हैं। उनका 'आलवन्दारस्तोत्र' प्रपत्तिमार्ग का सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र है।

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य ने भगवत्प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम उपाय भक्ति-प्रपत्ति को माना है। उन्होंने भक्तिमार्ग का प्रचार करने के लिये सारे भारत की यात्रा की और गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा। वेदान्तसूत्रों पर इनका भाष्य श्रीभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी श्रीसम्प्रदाय कहलाता है; क्योंकि इस सम्प्रदाय की आद्यप्रवर्तिका श्रीमहालक्ष्मी जी मानी जाती हैं।

श्रीरामानुज के सिद्धान्त के अनुसार भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं, वे ही प्रत्येक शरीर में साक्षीरूप में विद्यमान हैं। वे जगत् के नियन्ता, शेषी एवं स्वामी हैं और जीव उनका नियम्य, शेष तथा सेवक है। अपने व्यष्टि अहङ्कार को सर्वथा हटाकर भगवान् की सर्वतोभावेन शरण ग्रहण करना ही जीव का परम पुरुषार्थ है। भगवान् लक्ष्मी-नारायण जगत् के माता-पिता और जीव उनकी सन्तान हैं। माता-पिता का प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना ही सन्तान का धर्म है। वाणी से भगवान् नारायण के नाम का ही उच्चारण करना चाहिये और मन-वाणी एवं शरीर से उनकी सेवा करनी चाहिये। श्रीभूलीला महादेवियों के सहित भगवान् नारायण की सेवा प्राप्त होना ही परम पुरुषार्थ है। भगवान् के इस दासत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है।

भगवान् अनन्त गुणगणावली से समन्वित हैं। वे सृष्टिकर्त्ता, कर्मफलप्रदाता, नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, अपार-कारुण्य, सौशील्य, वात्सल्य, औदार्य, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि अनन्तानन्त सद्गुणों के महासागर हैं।

ईश्वर का स्वरूप पाँच प्रकार का है—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। श्रीभगवान् शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज हैं। श्री-भूलीला सहित समस्त दिव्याभूषणों से विभूषित हैं। वे भक्तों के प्रेमानन्द में सदा निमग्न रहते हैं। आचार्य के अनुसार न्यास विद्या ही प्रपत्ति है। अनुकूलता का सङ्कल्प प्रतिकूलता का त्याग, भगवान् में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण–सब प्रकार से केवल भगवान् के शरण हो जाना ही प्रपत्ति हैं। अत: सर्वस्व निवेदनरूप शरणागत भक्ति ही भगवान् की प्रसन्नता का प्रधान साधन है। शरणागत भक्त को करुणामय भगवान् अपना विशिष्ट प्रेम प्रदान कर कृतार्थ कर देते हैं। रामानुजाचार्य ने दैन्यभाव की प्रतिष्ठा की है। आपने अपने शरणागतिगद्य, श्रीरङ्गगद्य तथा वैकुण्ठगद्य (गद्यत्रय) में प्रेमाभक्ति का निचोड़ लाकर रख दिया है।

आचार्य स्वयं कहते हैं—भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ। मैं कब अपने कुल के स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायण का जो मेरे योग्य, दाता, पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रों द्वारा दर्शन करुँगा। मैं कब भगवान् के युगल चरणारविन्दों को अपने मस्तक पर धारण करुँगा? कब वह समय आयेगा जबकि मैं भगवान् के दोनों चरणारविन्दों की सेवा की आशा से अन्य सभी भोगों की आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओं से दूर हो भगवान् के युगल चरणारविन्दों में प्रवेश कर जाऊँगा? कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा, जब मैं भगवान् के युगल चरणकमलों की सेवा के योग्य होकर उन चरणों की आराधना में ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टि से मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर वाणी द्वारा मुझे अपनी सेवा में लगने का आदेश देंगे। आचार्य पुनः प्रार्थना करते हैं—

हे प्रभो! मैं पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, रत्नराशि, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अविनाशी मोक्षपदसहित सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर समस्त ब्रह्माण्ड का आक्रान्त करने वाले आपके दोनों चरणों की शरण में आया हूँ—

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरुन्।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च।।
सर्वधर्मांश्च संऽव्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो।।

(शरणागतिगद्यम्)

उनका कहना है—हे पूर्णकाम! सत्यसङ्कल्प! परब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम! हे महान् ऐश्वर्य से युक्त श्रीमन्नारायण! हे वैकुण्ठनाथ! आप अपार करुणा, सुशीलता, वत्सलता, उदारता, ऐश्वर्य और सौन्दर्य आदि गुणों के महासागर हैं, छोटे-बड़े का विचार न करके सामान्यतः सभी लोगों को आप शरण देते हैं, प्रणतजनों की पीड़ा हर लेते हैं। शरणागतों के लिए आप वत्सलता के समुद्र ही हैं। आप सदा ही समस्त भूतों की यथार्थता का ज्ञान रखते हैं। सम्पूर्ण चराचर भूतों के सारे नियमों और समस्त जड़-चेतन वस्तुओं के आप अवयवी हैं (ये सभी आपके अवयव हैं)। आप समस्त संसार के आधार हैं, अखिल जगत् तथा हम सभी लोगों के स्वामी हैं। आपकी कामनाएँ पूर्ण और आपका सङ्कल्प सच्चा है। आप समस्त प्रपञ्च से भिन्न और विलक्षण हैं। याचकों के तो आप कल्पवृक्ष हैं, विपत्ति में पड़े हुए के सहायक हैं। ऐसी महिमा वाले तथा आश्रयहीनों को आश्रय देने वाले हे श्रीमन्नारायण! मैं आपके चरणारविन्दयुगल की शरण में आया हूँ; क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरे लिये कहीं भी शरण नहीं है।

श्रीरङ्गनाथ स्वामी से अपना प्रेम निवेदन करते हुए वे उनसे अपना दास्य-भाव देने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

तवानुभूतिसम्भूतप्रीतिकारितदासताम्।
देहि मे कृपया नाथ न जाने गतिमन्यथा।।

(श्रीरङ्गगद्यम्)

हे नाथ! कृपा करके मुझे अपना सेवक बना लीजिये। मुझे अपनी दासता, किङ्करता का दान दे दीजिये। कैसी दासता? जो आपकी प्रीति से होती है–प्रेम जिसको करा लेता है। कैसा प्रेम? आपके अनुभव से होने वाला। मैं अनन्त लावण्य, अपार माधुर्य, परम सौन्दर्य की प्रतिष्ठाभूत आपकी दिव्य मूर्तिका एवं आपके अनन्त सौशील्य, वात्सल्य आदि गुणों का अनुभव करुँ। वह अनुभव ऐसा होगा कि मेरे हृदय में अपके प्रति तैल धारा के समान अविच्छिन्न प्रेम लहरा देगा। वह प्रेम मुझसे आपकी सेवा करायेगा। मैं उस प्रेम में विभोर होकर आपकी सेवा-सपर्या, भजन-भक्ति करुँगा। आपकी ऐसी सुन्दर सेवा भक्ति के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई उपाय अपने उद्धार का और अन्य कोई लक्ष्य अपने जीवन का नहीं सूझ रहा है। यह सेवा ही मेरी गति है–उपाय है और जीवन का लक्ष्य है।

अस्त्रराज श्रीसुदर्शनचक्र

स्फुरत्सहस्रारशिखातितीव्रं सुदर्शनं भास्करकोटितुल्यम् ।
सुरद्विषां प्राणविनाशि विष्णोश्चक्रं सदाऽहं शरणं प्रपद्ये।।

भक्त भयहारी भगवान् नारायण के प्रधान अमोघ अस्त्र सुदर्शनचक्र हैं। भगवान् नारायण अपने दक्षिण हाथ में सुदर्शनचक्र को धारण किये रहते हैं। सुदर्शनचक्र में करोड़ों सूर्य के समान तेज है।

श्रीसुदर्शनचक्र—विश्व के मार्ग प्रदर्शन करने में नेत्र के समान प्रधान हैं, उनसे शुभ-अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं। वे उपासकों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाले, शत्रु वर्ग का संहारक तथा ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज–इन षट् गुणों से सम्पन्न हैं। श्रीसुदर्शनचक्र अपनी दिव्य ज्योति द्वारा हजारों विपत्तियों का निवारण करते हैं।

श्रीसुदर्शनचक्र भगवान् का आयुध होते हुए दिव्य एवं चेतन है। उनमें प्राकृत प्राणियों के पाप तथा कष्ट-निवारण की अपूर्व क्षमता है। भगवान् की तरह उनके आयुध श्रीसुदर्शनचक्र का भी पूजन होता है। वर्तमान में श्रीरङ्गम्, काँञ्चीपुरी आदि दिव्य देशों में भगवान् की प्रतिमा की तरह श्रीसुदर्शन-चक्र का पूजन हो रहा है। सुदर्शनचक्र को प्रसन्न करने के लिए श्रीसुदर्शन शतक का पाठ किया जाता है, उसका अपूर्व चमत्कार देखा जा रहा है। महान् विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति के कष्ट का निवारण श्रीसुदर्शनशतक के पाठ से होता है। राहु, शनि आदि क्रूर ग्रहों के प्रभाव को हटाने की सामर्थ्य श्रीसुदर्शनशतक में है। उसमें किसी भी व्यक्ति के मारकेश उपस्थित होने पर उसके निवारण का अपूर्व चमत्कार देखा गया है। अनेक भक्त सुदर्शनशतक के पाठ से कष्टों से मुक्त हो गये हैं। श्रीशत्रुघ्न जी श्रीसुदर्शनचक्र के ही अवतार थे।

जातौ भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचक्रे गदाभृतः ।

(अध्यात्म-१.४.१८)

अर्थात् भगवान् गदाधर के शङ्खचक्र भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतरित हुए हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि नित्य शत्रु हैं, उनके नाश करने वाले शत्रुघ्न जी हैं।

'शत्रुघ्नोनित्य शत्रुघ्नः' जीव अनादिकाल से कष्टों का अनुभव करते आ रहे हैं। उनसे मुक्ति के लिये वेदों एवं शास्त्रों में चक्र अङ्कित होना आवश्यक कहा गया है। चक्र की प्रतिकृति बनाकर आचार्यगण, शिष्यों को दक्षिण भुजा पर अङ्कित करते हैं। पञ्च संस्कारों में प्रथम संस्कार है–शङ्ख-चक्र धारण करना।

'आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कणं हरेः'। सुदर्शनचक्र धारण करना सोलह प्रकार की भक्तियों में प्रथम भक्ति है। ऐसा देखा गया है कि जो व्यक्ति विशेष कष्ट में है वह शङ्ख, चक्रादि पञ्चसंस्कारों से संस्कृत हो जाने पर कष्ट से मुक्त हो गया है।

अनन्य भक्त श्रीअम्बरीष की रक्षा के लिये भगवान् ने सुदर्शनचक्र को नियुक्त कर दिया था। एक बार ईर्ष्यावश श्रीदुर्वासा जी अम्बरीष को जलाने के लिये उद्यत हो गये। श्रीमन्नारायण के द्वारा अम्बरीष के रक्षार्थ नियुक्त सुदर्शनचक्र कृत्या को भस्म कर दुर्वासा की ओर बढ़े। दुर्वासा जी समझ गये कि सुदर्शनचक्र मुझे भी जला देंगे, अतः वे भाग चले। दुर्वासा जी सभी दिशाओं में भागकर अपनी जान बचाने का प्रयास करने लगे; परन्तु असह्य तेज वाले सुदर्शनचक्र उनका पीछा न छोड़ सके। तेजोमय चक्र से अपनी रक्षा के लिए दुर्वासा जी ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्मा ने कहा कि दुर्वासा जी! हम जिनके बनाये नियमों में बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसार का हित करते हैं उन भगवान् के भक्त के द्रोही को बचाने में हम असमर्थ हैं। दुर्वासा जी वहाँ से निराश होकर शङ्कर जी के पास गये, शङ्कर जी ने दुर्वासा से कहा कि जिन नारायण से अनेकों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और समय आने पर उनमें लीन हो जाते हैं, जिनमें हमारे जैसे हजारों शिव चक्कर काटते रहते हैं। उन नारायण के भक्त से द्रोह करने वाले को बचाने में हम समर्थ नहीं हैं। विश्वेश्वर भगवान् का यह चक्र हमलोगों के लिए असह्य है। आप भगवान् की शरण में जाँये, वे ही आपका मङ्गल करेंगे।

दुर्वासा जी भगवान् के चक्र के तेज से जल रहे थे, उन्होंने काँपते हुए भगवान् नारायण के चरणों में गिरकर कहा कि मैंने आपके प्रिय भक्त के प्रति अपराध किया है, आप मुझे उससे बचाइये। भगवान् ने दुर्वासा से कहा कि ब्राह्मणों के लिए तपस्या और विद्या परम कल्याण के साधन हैं; परन्तु यदि ब्राह्मण उदण्ड या अन्यायी हो जाय तो वे दोनों उलटा फल देने लगते हैं। आप राजा अम्बरीष के पास जाइये, उनसे क्षमा माँगिये। दुर्वासा जी भगवान् के आदेशनुसार अम्बरीष के पास गये। अम्बरीष ने प्रार्थना कर सुदर्शनचक्र को शान्त कर दिया और दुर्वासा को हृदय में लगाया। इस प्रसङ्ग से सुदर्शनचक्र के अपूर्व तेज और महत्त्व प्रकट होता है।

श्रीराम और सुदर्शनचक्र—जिस समय भगवान् श्रीराम का प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय उनके चार हाथ थे, दो ऊपर की ओर और दो नीचे की ओर। वे ऊपर के दायें हाथ में सुदर्शनचक्र धारण किये हुए थे। अध्यात्मरामायण के अनुसार अहल्या ने भगवान् राम के चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म–से सुशोभित नारायण के रूप में देखा है। वैकुण्ठ गमन काल में श्रीराम चमुर्भुज नारायण के रूप में होकर गये हैं। उस समय श्रीशत्रुघ्न जी चक्र के रूप होकर भगवान् के हाथ में स्थित हो गये हैं।

श्रीकृष्ण और सुदर्शनचक्र—भगवान् श्रीकृष्ण अवतार काल में चतुर्भुज थे। उनके ऊपर के दायें हाथ में सुदर्शनचक्र सुशोभित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को सुदर्शनचक्र से वध किया था।

जरासन्ध की मृत्यु के बाद कैदियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को चतुर्भुज शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए साक्षात् नारायण के रूप में दर्शन किया है। जरा व्याधा के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में बाण लगने पर असह्य तेज वाले सुदर्शचक्र मूर्तिमान होकर भगवान् की सेवा कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही वे नित्यधाम वैकुण्ठ चले गए।

एक बार करुष देश का राजा शाल्व मूर्खों के कहने पर अपने को वासुदेव कहने लगा। उसने नकली दो भुजा बनाकर चतुर्भुज वासुदेव का रूप बना लिया। उसने पश्चात् द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण के पास एक दूत द्वारा यह सन्देश भेजा कि मैं ही वासुदेव हूँ, कृष्ण! तुम अपने को वासुदेव कहना छोड़ दो, अन्यथा आकर युद्ध करो। भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दूत से कहा कि जाकर कह दो कि मैं आता हूँ। राजा शाल्व उन दिनों अपने मित्र काशी नरेश के पास ही रहता था। भगवान् श्रीकृष्ण काशी पहुँच गए, शाल्व भगवान् कृष्ण का आगमन सुनकर दो अक्षौहिणी सेना लेकर उनसे लड़ने के लिए बाहर निकल आया। काशी नरेश भी शाल्व के तरफ से श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए आ गए। भगवान् श्रीकृष्ण शाल्व की सारी सेनाओं को ध्वस्त कर डाले और अपने सुदर्शचक्र से शाल्व के सिर काट लिये। पुन: भगवान् ने एक ऐसा बाण चलाया कि काशी नरेश का सिर कटकर राजद्वार पर जा गिरा। उसे देखकर काशी नरेश के परिवार शोक मग्न हो गये। उसका पुत्र सुदक्षिण ने पिता के अन्त्येष्टि संस्कार के बाद श्रीकृष्ण को वध करने का सङ्कल्प लिया। उसके लिए उसने काशी में रहकर अपने तप से शङ्कर जी को प्रसन्न किया। शङ्कर जी से उसने कहा कि जो मेरे पिता का वध करने वाला है, उसके वध का उपाय बतलाइये। शङ्कर जी ने कहा कि तुम दक्षिणाग्नि में अभिचार विधि से आराधना करो। उससे कृत्या के रूप में प्रकट होकर तुम्हारा शत्रु यदि ब्राह्मण का भक्त नहीं होगा तो उसे कृत्या मार डालेगा। सुदक्षिण ने अभिचार विधि से अग्नि का आराधन किया, अग्नि कृत्या का रूप धारण कर प्रगट हुआ और कृष्ण को जलाने के लिए द्वारिकापुरी पहुँच गया। उसके प्रतिक्रिया में भगवान् ने अपने सुदर्शनचक्र को छोड़ा सूर्य के समान देदीप्यमान सुदर्शनचक्र को देखकर अग्नि लौट गया और काशी नरेश के पुत्र सुदक्षिण को नष्ट कर दिया। श्रीसुदर्शनचक्र भी काशी में आकर सम्पूर्ण काशी को जलाकर भस्म कर दिये, तदनन्तर द्वारिकापुरी लौट गये। श्रीसुदर्शनचक्र वर्तमान समय में भी मानव के विशेष कल्याणप्रद तथा सर्वविध कष्ट निवारक है। जो व्यक्ति सुदर्शचक्र से प्रेम करता है उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

उद्धव जी का प्रेम तथा उनका बद्रीकाश्रम गमन

जब उद्धव जी पाँच वर्ष के थे तब वे बालकों की तरह खेल में ही श्रीकृष्ण की मूर्ति बनाकर उसकी सेवा, पूजा में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि अपनी माता को भोजन के लिए बुलाने पर भी भगवान् की सेवा छोड़कर नहीं जाना चाहते थे।

जब भगवान् श्रीकृष्ण को १२५ वर्ष इस भूतल पर अवतार लिए हुए हो गये तब ब्रह्माजी, शङ्कर आदि के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कहे कि प्रभो! आप हमलोगों की प्रार्थना पर पृथ्वी का भार उतारने के लिए आये हैं। आपने दुष्टों का नाश कर साधु पुरुषों के कल्याणार्थ धर्म की स्थापना भी कर दी। उससे सभी दिशाओं में आपकी पवित्र कीर्ति फैल गयी। इसे सुनकर सबलोग अपने मन का मैल मिटा लेते हैं। कलियुग में भी जो मनुष्य आपकी इन लीलाओं का श्रवण एवं कीर्तन करेंगे वे सुगमता से अज्ञान रूप अन्धकार से पार कर जायेंगे। अब आपका काम कोई बाकी नहीं रह गया है, अत: आप वैकुण्ठ पधारें। भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा से कहा कि आप जैसा कह रहे हैं मैं पहले से ही वैसा निश्चय कर चुका हूँ। मैंने आपलोगों का सब काम पूरा करके पृथ्वी का भार उतार दिया; परन्तु अभी तक एक काम बाकी है। सब यदुवंशी बल, वीरता, शूरता और धन-सम्पत्ति से उन्मत्त हो रहे हैं, वे सारी पृथ्वी को ग्रस लेने पर तुले हुए हैं। वे मर्यादा का उल्लङ्घन करके सारे लोकों का संहार कर डालेंगे। अब वे ब्रह्मणों के शाप से नष्ट होने लगे हैं। अत: उनका अन्त हो जाने पर मैं आपके धाम में होते हुए वैकुण्ठ जाऊँगा। भगवान् के वचन सुनकर ब्रह्माजी चले गये, उस समय श्रीकृष्ण के बड़े प्रेमी और सेवक उद्धव जी प्रभु के पास आ गये। उन्होंने भगवान् के चरणों पर अपना सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे। उद्धव जी बोले योगेश्वर! आप देवाधिदेवों के अधीश्वर हैं, आपकी लीलाओं के श्रवण, कीर्तन से जीव पवित्र हो जाता है। आप चाहते तो ब्राह्मणों के शाप को मिटा सकते थे; परन्तु आपने वैसा नहीं किया। इससे मैं समझ गया कि अब आप यदुवंश का संहार करके इस लोक का परित्याग कर देंगे। मैं आधे क्षण के लिये भी आपके चरण कमलों के त्याग की बात सोच भी नहीं सकता। हे स्वामिन्! अब मुझे भी अपने धाम में ले चले। आपकी एक-एक लीला मनुष्यों के लिए परम मङ्गलमयी और कानों के लिए अमृतस्वरूप है, हम उठते-बैठते, सोते-जागते, घूमते-फिरते आपके साथ रहे हैं। हमने आपके साथ स्नान किया, खेल खेले, भोजन किया। हमारी एक-एक चेष्टा आपके साथ होती रही है। आप हमारे प्रियतम हैं, आप ही हमारी आत्मा हैं। वैसी स्थिति में हम आपको कैसे छोड़ सकते हैं। हमने आपकी धारण की हुयी माला पहना, आपके लगाये हुए चन्दन लगाया, आपके उतारे हुए वस्त्र पहना, हम आपकी जूठन खाने वाले सेवक हैं, इसलिए हम आपकी माया पर अवश्य विजय प्राप्त कर लेंगे। हमें आपकी माया का डर नहीं हैं। डर है केवल आपके वियोग का, अत: हमें छोड़िये नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि अब यह यदुवंश पारस्परिक फूट और युद्ध से नष्ट हो जायेगा। आज के सातवें दिन समुद्र द्वारकापुरी को डूबो देगा। जिस क्षण मैं मर्त्यलोक का परित्याग कर दूँगा। उसी क्षण इसके सारे मङ्गल नष्ट हो जायेंगे। थोड़े ही दिनों में कलियुग आ जायेगा। कलियुग में अधिकांश लोगों की रुचि अधर्म में होगी। तुम भी इस पर मत रहना।

उद्धव जी मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने

प्रिय हैं उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शङ्कर, सगे भाई बलिराम जी स्वयं अर्धाङ्गिनि लक्ष्मी जी और मेरी अपनी आत्मा भी नहीं है। जिसे किसी की अपेक्षा नहीं जो जगत् के चिन्तन से सर्वथा ऊपर है जो मेरे ही मनन, चिन्तन में तल्लीन रहता है और राग द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है। उस महात्मा के पीछे-पीछे यह सोचकर निरन्तर घूमता रहता हूँ कि उनके चरणों की धूल उड़-उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाये और मैं पवित्र हो जाऊँ।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्।।
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूजयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।।

(भा०स्क०–११, अ०-१४/१५-१६)

भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि का रहस्य विस्तारपूर्वक उद्धव जी को सुनाया। भगवान् कृष्ण की बात सुनकर उद्धव जी की आँखों में आँसू उमड़ आये। प्रेम की बाढ़ से उनका गला रुन्ध गया। वे भगवान् के सामने, चुपचाप हाथ जोड़े रहे और वाणी से कुछ बोल न सके। उस समय उनका चित्त प्रेम से विह्वल हो रहा था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श किया और हाथ जोड़कर उन्होंने भगवान् से कहा कि अब आप कृपा करके मुझ शरणागत को ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे आपके चरण कमल में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी।।

(भा०-११, अ०-२९/४०)

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से कहा कि अब तुम मेरी आज्ञा से बदरीकाश्रम में चले जाओ। वह मेरा ही आश्रम है। वहाँ मेरे चरणकमलों के धोवन गङ्गाजल में स्नान तथा उसका पान करते रहना। अलकनन्दा गङ्गा के दर्शन मात्र से तुम्हारे सारे पाप-ताप नष्ट हो जायेंगे। तुम वहाँ वृक्षों की छाल पहनना, वन के कन्द, मूल, फल खाना और किसी भोग की अपेक्षा न रखकर निःस्पृह भाव से रहना। अन्त में तुम भागवत् धर्म मे रमे रहने के कारण मेरे लोक वैकुण्ठ में पहुँच जाओगे।

भगवान् श्रीकृष्ण की आदेशानुसार उद्धव जी बदरीकाश्रम चले गये और उनके बताये हुए नियमों का पालन करते रहे। अन्त में भगवत्प्रेम की प्रतिमूर्ति श्रीउद्धव जी दिव्यधाम वैकुण्ठ में चले गये।

●

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नो मेधया न बहुधा श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।। (उपनिषद्)

परमात्मा न उनको मिलते हैं जो शास्त्रों को पढ़ सुनकर लच्छेदार भाषा में ब्रह्मतत्त्व का अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं, न तर्कशील बुद्धिमान मनुष्यों को ही मिलते हैं जो बुद्धि के अभिमान में प्रमत्त होकर तर्क के द्वारा विवेचन करके उन्हें समझने की चेष्टा करते हैं और न उन्हीं को मिलते हैं, जो परमात्मा के विषय में बहुत सुनते रहते हैं। परमात्मा तो उसी को प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और स्वीकार उसी को करते हैं, जिसको उनके लिए उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना नहीं रह सकता। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता है। परमात्मा योगमाया को हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं। जैसे–शबरी, जटायु, गजेन्द्र, प्रह्लाद आदि भक्तों के समक्ष भगवान् प्रकट हो गये।

हिमालय की तीर्थयात्रा

धर्मशास्त्रों पुराणों और आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तराखण्ड में तीर्थ यात्रा की परम्परा अनादि है। सम्भवत: सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही यहाँ तीर्थ स्थल है। दक्षिण भारत के आलवार सन्तों की दिव्यसूक्तियों के अनुशीलन करने पर १०८ जिन दिव्य-चिन्मय देशों की चर्चा मिलती हैं उनमें बदरिकाश्रम और तिरुटिरिदि (जोशीमठ) का भी नाम आया है। ये दिव्यदेश अनादि कहे गये हैं।

महर्षि मनु ने आर्यावर्त की सीमा में उत्तराखण्ड हिमालय को भी सम्मिलित किया है। बोधायन-स्मृति, मनुस्मृति, वशिष्ठस्मृति और वृहद्पाराशरीय स्मृति आदि धर्मशास्त्रों ने हिमालय क्षेत्र को सृष्टि के पवित्र खण्डों में गिना है। वृहद्पाराशरीय-स्मृति धर्मशास्त्र (१/४२/४४) में उल्लेख है कि सुखेच्छु द्विजाति के लोग समुद्र में जाने वाली पवित्र नदियों तथा मुनियों से सेवित तीर्थों के निकट निवास करें; क्योंकि मुनियों के निवास से वे क्षेत्र भी पवित्र हो गए हैं।

समुद्र में जाने वाली गङ्गा-यमुना अवश्य ही ऐसी नदियाँ हैं और इनका उद्गम स्थल उत्तराखण्ड हिमालय है, मुनियों से सेवित भी यह क्षेत्र हमेशा से रहा है।

शास्त्रों में कहा गया है कि गङ्गा द्वार की यात्रा से मानव को सारे पापों से छूटकारा मिलता है। शंखस्मृति (१४/२७/२९) में कहा गया है कि उन तीर्थों में पितरों के निमित्त जो कुछ किया जाता है उसका फल अक्षय होता है।

तीर्थयात्रा का हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू धर्म में प्रधान स्थान है। प्रत्येक हिन्दू की लालसा रहती है कि वह कम से कम एक बार तीर्थ-यात्रा अवश्य करे। तीर्थयात्रा क्यों की जाती है? इसके महत्त्व पर प्रकाश डालने से पूर्व यह समझना जरुरी है कि तीर्थ क्या है? ***'तरति पापादिकं यस्मात्'*** अथवा ***'तीर्यते अनेन'*** अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त हो जाय उसे तीर्थ कहते हैं।

व्याकरण के अनुसार 'तृ' धातु से 'थ' प्रत्यय जोड़ने पर तीर्थ शब्द बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ है कि जिसके द्वारा तरा जाय। तीर्थ के अनेक अर्थ इस प्रकार हैं—देव, गुरु, शास्त्र, उपाय, पुण्यकर्म व पवित्र स्थान आदि; परन्तु संसार में इस शब्द का रूढ़ अर्थ पवित्र स्थान है। अब इसी अर्थ में यह लिया जाता है। वैष्णव सन्त परम्परा में भगवान् के चरणोदक को तीर्थ कहा जाता है।

कुछ विद्वानों ने आधुनिक ढङ्ग से तीर्थ शब्द का निर्वचन किया है। उसके अनुसार ती से तीन और र्थ से अर्थ–प्रयोजन लेना चाहिए। अर्थात् जिससे तीन पदार्थों की प्राप्ति हो। वैसे संसार में पदार्थ तो चार हैं–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। अर्थ (धन) तो तीर्थ यात्रा में खर्च ही होता है। प्राप्ति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। शेष तीन पदार्थों धर्म, काम और मोक्ष–इन तीनों की प्राप्ति तीर्थ यात्रा से होती है।

वर्तमान में जैसा कि ऊपर कहा गया है तीर्थ शब्द का रुढ़ अर्थ ही लिया जाता है अर्थात् पवित्र स्थान जैसे–नदियों के सङ्गम, अवतारों के जन्म-स्थान महापुरुषों के तप-स्थान आदि।

वेदों में तीर्थों की बड़ी प्रशंसा की गई है। ऋग्वेद में तीर्थराज प्रयाग में स्नान-दानादि करने वालों को स्वर्ग प्राप्ति की बात कही गई है।

अथर्ववेद कहता है–मनुष्य तीर्थों के सहारे भारी से भारी विपत्तियों का सामना कर सकता है। तीर्थों के सेवन से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले पुण्यात्माजन जिस मार्ग से जाते हैं तीर्थ सेवन करने वाले भी उसी मार्ग से उत्तम लोक जाते हैं।

यजुर्वेद भगवान् को तीर्थ में, नदी के जल में, तट में, तटवर्ती छोटे-छोटे तृणों में, कुशाङ्कुरों में

तथा जल के फेनों में निवास करने वाला कहकर नकस्कार करता है।

नमस्यीर्ध्याय च कूल्याय च नमः शष्च्यात्र च फेन्याय च। (यजु०–१६८५२)

ऋग्वेद के एक मन्त्र में भारत की प्रधान नदियों की स्तुति की गई है कि वे मनुष्य को वाञ्छित फल प्रदान करें। मन्त्र इस प्रकार है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती
शूतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।।

(ऋग्वे०म०-१०)

तात्पर्य यह है कि तीर्थ सेवन की परम्परा आधुनिक नहीं है अपितु वैदिक युग में ही तीर्थ यात्रा की परम्परा स्थापित हो चुकी थी।

तीर्थ तीन प्रकार के कहे गये हैं–जङ्गम, मानस और भौम।

(१) जङ्गम तीर्थ–वेदपाठी ब्राह्मणों व साधुओं को जङ्गम तीर्थ कहा जाता है। ब्राह्मणों के चरण, गायों की पीठ, बालकों के शिर तथा अपने दाहिने कान को भी तीर्थ कहा गया है।

(२) मानस तीर्थ–शास्त्रों में सत्य, क्षमा इन्द्रिय-निग्रह, दया, सरलता, मृदुभाषण ब्रह्मचर्य, तप, दान, मानव, पुण्य–ये सब मानस तीर्थ कहे गये हैं।

(३) भौम तीर्थ–सप्तपुरियाँ व चार धाम आदि भौम तीर्थ हैं। जैसे शरीर के कुछ अङ्ग पवित्र होते हैं वैसे ही पृथ्वी के कुछ भाग पवित्र होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। जैसे–भूमि का प्रभाव, जल, तेज, ऋषि-मुनियों का आवास, अवतारों की लीला भूमि आदि। इन कारणों से पूरे भारत को तीर्थ कहा गया है।

तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी, गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्यूतोदार कथा प्रसङ्गः।।

जहाँ अच्युत भगवान् की मनोहर कथा होती है, वहाँ गङ्गा, यमुना, वेणी, गोदावरी, सिन्धु और सरस्वती आदि सभी तीर्थ रहते हैं।

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसनां पापनाशनम्।।

जिस घट में नित्य भागवत की कथा होती है, वह घर भी तीर्थ रूप ही हैं तथा उसमें रहने वालों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वैसे साधुओं के दर्शन भी तीर्थ रूप ही माने गये हैं।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूतानि साधवः।

हमारा भारत एक विशाल देश है। इसे अनेक तीर्थों का देश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। नागाधिराज हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तीर्थों की एक शृङ्खला बनी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि तीर्थ यात्रा करनी क्यों चाहिए? इसका महत्त्व क्या है? मान्यताओं के अनुसार संसार एक विशाल भव-सागर है जिसको पार करने में तीर्थ ही साधन माने गए हैं। तीर्थों के पवित्र वातावरण में पहुँचकर मनुष्य निष्पाप हो जाता है। इस मान्यता को लेकर ही इस धर्मप्राण देश के लोग यात्रा करते हैं। इस प्रकार की यात्रा में धार्मिक दृष्टि से तो पुण्य लाभ होता ही है। उसके साथ-साथ स्वदेश के विभिन्न क्षेत्रों और उसमें निवास करने वाली समान संस्कृति के सूत्र में आबद्ध जनता के शुभ दर्शन भी होते हैं। स्थान-स्थान की वेष-भूषा, रहन-सहन, आचार-विचार, रङ्ग-रूप, बोली-भाषा, वनस्पति और पैदावार के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। मनुष्य को इससे धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामाजिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

हमारे तीर्थ प्रायः प्रकृति के लिए भूमि में स्थापित किये गये हैं। प्रकृति सुषमा सच्चिदानन्द स्वरूप पर ब्रह्म की अन्तःप्रकृति के सौन्दर्य का पदार्थ है। वेदान्त के अनुसार भी संसार प्रभु का शरीर माना गया है, जगत् के अन्तर्गत जितने जीव-जन्तु, लता पत्रादिक हैं, वे सब शरीर पर ब्रह्म के अवयव हैं प्रकृति की झाकी में राग-द्वेष

विमुक्त मानव प्रभुस्वरूप दिव्य ज्योति का अनुभव करने लगता है। प्रकृति की सरल मञ्जुल-सी गोद में प्रतिष्ठित भारतीय तीर्थ इस सत्य के ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनमें रहकर साधारण मनुष्य भी परमात्म तत्त्व का विश्वासी बन जाता है। असाधारण की बात तो पृथक् ही है।

ऋषियों ने इस देश में महत्त्वपूर्ण तीर्थों की स्थापना एक ही जगह न करके देश के चारों कोनों पर की है ताकि एक प्रान्त के लोग अपने ही प्रान्त तक सीमित न रहें। वे दूसरे क्षेत्र की बोली भाषा वहाँ की प्राकृतिक छटा और संस्कृति से भी परिचित हों। अनेकता में एकता की भावना भी इससे पुष्ट होती हैं।

मनुष्य तीर्थवास से धार्मिक भावना लेकर लौटता है, उसके दर्शन से अन्यलोग भी प्रभावित हो जाते हैं। तीर्थों का वातावरण स्वभावत: ऐसा होता है कि उनका स्थायी तथा सात्त्विक प्रभाव मनुष्य के हृदय और आत्मा पर पड़ता है। तीर्थ यात्रा से मनुष्य की कूप मण्डूकता की भावना भी तिरोहित हो जाती है। उसका दृष्टिकोण विशाल और विस्तृत हो जाता है। लोक संगृही भावना का विकास और परस्पर के सौहार्द की अभिवृद्धि भी इससे होती है। सङ्क्षेप में यही कहा जा सकता है कि तीर्थ यात्रा से लौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकार का लाभ सम्भव है।

मकान के लिये भूमि-विचार

भूमि चार प्रकार की होती है- गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यपपृष्ठ और नागपृष्ठ। दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण की ओर ऊँची भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर मकान बनाकर रहने से धन तथा आय की वृद्धि होती है। बीच में ऊँची और चारों ओर नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि में वास करने से उत्साह, सौख्य तथा धन-धान्य का लाभ होता है। पूर्व, अग्नि तथा ईशानकोण में ऊँची तथा पश्चिम दिशा में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर वास करनेवाला मनुष्य धन, पुत्र, पशु आदि से रहित हो जाता है। पूर्व पश्चिम की ओर लम्बी और उत्तर-दक्षिण की ओर ऊँची भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर वास करने वाले को उच्चाटन, मृत्यु, स्त्री पुत्रादि की हानि तथा शत्रुओं की वृद्धि होती है। अत: गजपृष्ठ तथा कूर्मपृष्ठ भूमि में ही मकान बनावें।

द्वारविचार

मकान के जिधर (लम्बाई या चौड़ाई में) द्वार रखना हो, उसे नौ बराबर भाग कर दें। घर से बाहर निकलने में दाहिनी ओर पाँच भाग और बायीं ओर तीन भाग छोड़कर बीच के एक भाग में द्वार बनाना चाहिए। सर्वत्र वास्तुशास्त्रों में घर से निकलते समय दाहिनी ओर अधिक रखने का विधान है।

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे। त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम् ।।
दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निः सृते सति। यो भूयाद् दक्षिणे भागे वामे भूयात् स वामगः।।

मकान के बाहर वाले द्वार बीच में या कोणे पर नहीं रहना चाहिए। उससे विशेष हानि होती है। देवताओं के मन्दिर तथा यज्ञमण्डप में बीचोबीच दरवाजा रह सकता है। एक भीती पर दो मकान न बनावे। दोनों मकान के अलग-अलग दीवाल होना चाहिए। एक दीवाल पर दो मकान होने पर गृहस्वामी की हानि होती है।

श्रीवैकुण्ठनाथ से प्रार्थनास्वरूप श्रीवैकुण्ठ स्तव

मुक्त पुरुष प्राकृत-पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर के साथ अर्चिरादिमार्ग में सम्मानित होते हुए विरजा में स्नान करता है। वहाँ जीव का सूक्ष्म प्राकृत शरीर छूट जाता है और अप्राकृत दिव्यगुण प्रकट हो जाते हैं। विरजा के द्वितीय तट पर भगवान् रहते हैं, वे अपने कर-कमलों से मुक्तात्मा को स्पर्श करते हैं, जिससे चतुर्भुजरूप प्राप्त होता है। वहाँ से मुक्तात्मा वैकुण्ठवासियों के द्वारा विशेष सत्कृत होते हुए तथा ब्रह्मगन्ध तेज-रस आदि विशेष दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर श्रीवैकुण्ठ नगर के दिव्यमहामणिमय मण्डप में विराजमान श्रीवैकुण्ठनाथ का दर्शन करता है।

श्रीवैकुण्ठनाथ का दिव्य सिंहासन सम्पूर्ण शोभाओं का धाम है। वह लीला और त्रिपाद्–इन दोनों विभूतियों का विभाग करने वाला, भगवान् के स्वामित्व को प्रकाशित करने वाला, सर्वाश्चर्यमय और महाप्रभावशाली है। उस दिव्य सिंहासन के ऊपर अनेक शक्तियों से युक्त बारहदलों का दिव्य कमल है। उसकी कर्णिका के ऊपर पुष्पों के बने हुए दिव्ययोग पर्यङ्क (शय्या) है। दिव्यपर्यङ्क के ऊपर शेष शय्या है। वे अनन्त कल्याण गुणों से परिपूर्ण होने के कारण भगवान् के सर्वविध कैङ्कर्य के प्रधान अधिकारी हैं। उन्हीं शेषजी के ऊपर भगवान् श्रीमन्नारायण विराजते हैं। वे दिव्य शङ्ख-चक्रादि धारण किये हुए हैं। उनके दक्षिण पार्श्व में महालक्ष्मी जी और वाम पार्श्व में भूदेवी और नीला देवी सुशोभित हो रही हैं। उन्हीं भगवान् श्रीमन्नारायण के नित्यसेवा के लिए श्रीवैष्णवगण प्रतिदिन भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

कदामायापारे विशदविरजापारसरसि,
परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे ।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपपरे,
समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम् ।।१।।

हे भगवान्! वह समय कब आवेगा जब प्रकृति मण्डल के आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंह्रद सरोवर से परे चित्र-विचित्र मणियों से जड़ित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यन्त रमणीय सर्वोच्च स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मण्डप में सहस्रफणयुक्त शेष-शय्या पर नित्य मुक्तों से सम्मानित होकर सुख से बैठे हुए आपके दोनों चरण-ममलों की परिचर्या मैं करुँगा।

महासिन्धोः नीरे विगतकलुषो दिव्यगुणको,
हरे सद्गोत्रोऽमानव परिसरेऽलङ्कृत तनुः ।
भवेयं संश्लाघ्योऽमरनिकर संमानित भवन्,
कदाहं संरूढो वरगरुडयाने समचरम् ।।२।।

हे हरे! कब वह समय आवेगा जब मैं लीला विभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म वासना रहित दिव्य गुण युक्त होकर आपके द्वितीय दिव्य मङ्गल विग्रह अमानव भगवान् के सन्निधि में दिव्य वस्त्र भूषणों से अलङ्कृत होकर नित्य मुक्तों से सम्मानित प्रशंसायुक्त होते हुए गरुड़यान से आपके चरणसन्निधि में पहुँचूँगा।

कदा वा प्राविष्ट सुरतरुगणैराविलसितम्,
पदार्थैर्नित्योघैरमितविभवैः पूरितमजम् !
सदा शुद्धं शान्तं प्रभुमुपनिषद्भिर्विरचितं,
पुरं तत्पश्येयं तव करुणया दिव्यमजऽम् ।।३।।

कब वह शुभ समय आवेगा जब मैं देववृक्षों से (कल्प वृक्षों से) सुशोभित नित्य पदार्थों से युक्त निरवधिक, निरतिशय वैभवों से परिपूर्ण, शुद्ध सत्त्वमय, शान्त, सर्वसमर्थ, पञ्चोपनिषण्मय रचित, नित्य, चैतन्य, दिव्य, श्रीमहावैकुण्ठ को आपकी कृपा के अवलम्ब से देखूँगा।

कदा हर्म्यं गत्वा सुखमयमहामण्डपमणौ,
तदा वैतन्मध्ये सदसि वर पीठेऽब्जशिरसि ।
निषण्णं शेषांके सुरजितगणैकान्तिनिकटे,

प्रिया विद्युन्मध्ये घनसदृशमब्जाक्षसुमुखम् ।।४।।
यथा वद्विश्वांङ्गं प्रियमुचितमेकं सममलं,
शुभाढ्यंच्चास्त्राद्या भरण निजदीप्त्या विलसितम् ।
प्रपश्यञ्श्रीकान्तं सुरनिकरसंसेव्यमनिशं
प्रबोधानन्दं त्वां परमनुदधेयं सुरवरम् ।।५।।

हे भगवान्! वह समय कब आवेगा जब मैं आपके निज भवन (वैकुण्ठ) में जाकर आनन्दमय महामणि-मण्डप में नित्य मुक्तों की सभा के बीच सहस्त्रफणों से मण्डित शेषजी की गोद में सहस्त्रदल कमल के ऊपर बैठे हुए विद्युत् सदृश श्री, भूमि, नीला देवियों के मध्य में कमलनयन सुन्दर मुख मण्डल महामेघ सदृश सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करने वाले सबके परमप्रिय जग के अधिपति मङ्गलमय शङ्ख-चक्रादि आयुध वस्त्राभूषणों से विभूषित स्वयं प्रकाश से प्रकाशित श्रीलक्ष्मीपति आपको देखता हुआ वैकुण्ठ निवासी सभी अमरों से सर्वदा सेव्यमान, ज्ञानानन्दमय देवाधिदेव आपका अनुभव करुँगा।

कदा तस्मिन्दिव्ये वरगुणतरङ्गैश्च वृतिभिः,
भ्रमित्वा संस्तुत्वा कृतकरपुटः सामनिगमम् ।
सुगायन्संमोदे तव गुणगणान्मुक्त सुलभान्,
पद द्वन्द्वं दत्तं परमनुदधेयं शिरसि च ।।६।।

वह सुअवसर कब मिलेगा जब उस दिव्यलोक (श्रीवैकुण्ठ) में मुक्तों को सुलभ आपके दिव्य गुणों का हम स्मरण करते हुए, आनन्द के तरङ्गों में भ्रमण करते हुए, हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए, सामवेद का गान करते हुए, आनन्दसागर में गोता लगाते हुए, आनन्दित होऊँगा और आपका दिया हुआ प्रसाद रूप आपके दोनों चरण कमलों को मैं अपने मस्तक पर धारण करुँगा।

नुतं यद् ब्रह्माद्यैर्जगदखिलजं स्वस्तिनिलयम्,
महालक्ष्मीलाल्यं प्रवरसुरसेव्यं वर सुखम् ।
विचित्रं त्वां प्राप्य सकलविधिसम्बन्ध सहितं,
समं जीरं साकं सरसि कमलं कीर्तिधवलम् ।।७।।

हे भगवान्! आपके जिस चरणकमल को ब्रह्मादि देव बारम्बार नमस्कार करते हैं, जो सम्पूर्ण जगत् का सुखदायी, सकल मङ्गल का स्थान श्रीदेवी से लालित, नित्य मुक्तों से सुसेवित, सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला, नूपुरादि भूषणों से भूषित स्वच्छ कीर्तियुक्त नवीन कमल के समान सर्व सम्बन्ध सहित अतिविचित्र आपके उन दोनों चरणकमलों को अपने मस्तक पर कब धारण करुँगा।

कदाहं जातस्तेऽनुभवज महानन्दविभवात्,
स्वसङ्कल्पादेशादुररिकृत त्वद्दास्यमखिलम् ।
करिष्ये तत्प्रीतं मुहुरनुभवाञ्छ्री प्रिय सखम्,
भवेयं प्रीतोऽहं तव परिजनैर्मङ्गलपरम् ।।८।।

हे भगवान्! वह सु-समय कब आवेगा जब मैं आपके अनुभव से उत्पन्न महा आनन्दरूप वैभव से आपके आदेशानुसार सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वावस्था में आपकी दास्यता को शिर पर बारम्बार लक्ष्मीजी के अति-प्रिय आपको प्रसन्न करता हुआ आपके सेवकों के साथ मङ्गलानुशासन करते हुए प्रसन्न होऊँगा।

न कामये ह्यत्र परत्र भोगे न चात्मभोगे प्रवणो भवेयम् ।
विहाय सर्वं हि विरोधिवर्गं त्वद्दासदास्यं सततं भजेयम् ।।९।।

हे भगवान्! ऐहलौकिक और पारलौकिक स्वर्गादि सुखों की मुझे कामना नहीं है तथा केवल आत्मानुभव कैवल्य सुख में भी मुझे प्रेम नहीं है। आपके चरण सेवा के विरोधि वर्ग जितने हैं सबसे अलग होकर सदैव आपके दासों की दास्यता मैं करता रहूँ, यही मेरी कामना है।

न मे जगन्नाथ विना दयाया,
त्वदङ्घ्रि रामानुजपादपङ्कजम् ।
त्वयैव दत्तं करुणैकसिन्धो,
त्वमेवमेनं किल यां कुरुष्व ।।१०।।

हे जगन्नाथ भगवान्! आपकी दया बिना आपके चरण-कमल स्वरूप जो स्वामी रामानुजाचार्य थे उनका चरण-कमल मुझे प्राप्त नहीं हो सकता था। वह आप ही ने कृपा द्वारा मुझे दिया है। हे भगवान्! आप ही इसे इस प्रकार आत्मसात् कीजिए।

ब्रह्मतत्त्व क्या है?

गर्ग-गोत्र में उत्पन्न बलाका के पुत्र बालाकि नाम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन तो किया ही था, वे वेदों के अच्छे वक्ता भी थे। उन दिनों संसार में सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे उशीनर देशके निवासी थे; परन्तु सदा विचरण करने के कारण कभी मत्स्य देश, कभी कुरु-पाञ्चाल में और कभी काशी तथा मिथिला प्रान्त में रहते थे। इस प्रकार वे सुप्रसिद्ध गार्ग्य (बालाकि) एक दिन काशी के विद्वान् राजा अजातशत्रु के पास गये और अभिमानपूर्वक बोले– 'राजन्! आज मैं तुम्हें ब्रह्मतत्त्व का उपदेश करूँगा'। इस पर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु ने कहा–'आपकी इस बात पर हमने अपको एक सहस्र गौयें दीं। आज आपने हमारा गौरव राजा जनक के समान कर दिया। अत: इन्हें स्वीकार करके हमें ब्रह्मतत्त्व का शीघ्र उपदेश करें'।

इस पर गार्ग्य बालाकि ने कहा कि 'राजन्! यह जो सूर्यमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्म-बुद्धि से उपासना करता हूँ'। यह सुनकर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रु ने कहा—'नहीं, नहीं, इसके विषय में आप संवाद न करें। निश्चय ही यह सबसे महान् शुक्लाम्बरधारी तथा सर्वोच्चस्थिति में स्थित सबका मस्तक है। मैं इसकी इसी प्रकार उपासना करता हूँ। इसी प्रकार उपासना करने वाला दूसरा मनुष्य भी सबसे ऊँची स्थिति में स्थित हो जाता है'।

तब गार्ग्य बालाकि पुन: बोले-'यह जो चन्द्रमण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, मैं इसकी ब्रह्मरूप में उपासना करता हूँ'। यह सुनकर अजातशत्रु ने कहा-'नहीं, नहीं, इस विषय में आप संवाद न करें। यह सोम राजा है और अन्न का आत्मा है। इसकी इस प्रकार उपासना करने वाला व्यक्ति मुझ जैसा ही अन्नराशि से सम्पन्न हो जाता है'।

अब वे गार्ग्य बोले—'यह जो विद्युत्मण्डल में अन्तर्यामी पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ'। अजातशत्रु ने इस पर यही कहा कि 'नहीं, नहीं इस विषय में आप संवाद न करे। यह तेज का आत्मा है। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी हो जाता है'।

इसी प्रकार गार्ग्य क्रमश: मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, प्रतिध्वनि, पदध्वनि, छायामय पुरुष, शरीरान्तर्वर्ती पुरुष, प्राण तथा उभयनेत्रान्तर्गत पुरुष को ब्रह्म बतलाते गये और अजातशत्रु ने इन सबको ब्रह्म का अङ्ग तथा ब्रह्म को इनका अङ्गी सिद्ध किया। अन्त में हारकर बालाकि ने चुप्पी साध ली और अन्त में राजा अजातशत्रु को अपना गुरु स्वीकार किया और उनके सामने समिधा लेकर वे शिष्य भाव से उपस्थित हुए।

इस पर अजातशत्रु ने कहा—यदि क्षत्रिय ब्राह्मण को शिष्य बनाये तो बात विपरीत हो जायेगी, इसलिए चलिये, एकान्त में हम आपको ब्रह्म का ज्ञान करायेंगे। यों कहकर वे बालाकि को एक सोये हुए व्यक्ति के पास ले गये और उसे 'ओ ब्रह्मन्! ओ पाण्डरवासी! ओ सोम राजा'! इत्यादि सम्बोधनों से पुकारने लगे। पर वह पुरुष चुपचाप सोया ही रहा। तब उसे दोनों हाथों से दबाकर जगाया, तब वह जगा। तदनन्तर राजा ने बालाकि से पूछा—'बालाकि! यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था तब कहाँ था? और अब यह कहाँ से आ गया? किन्तु गार्ग्य यह कुछ न जान सके'।

अजातशत्रु ने कहा—'हिता नाम से प्रसिद्ध बहुत-सी नाडियाँ हैं। वे हृदय कमल से सम्बद्ध हैं और वहीं से निकलकर सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं। यह पुरुष सोते समय उन्हीं नाड़ियों में स्थित रहता है। जैसे क्षुरधान में छूरा रखा रहता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्गत हृदयकमल में इस परम पुरुष परमात्मा की उपलब्धि होती है। वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ अनुगत सेवक की भाँति उसका अनुशरण करती हैं। इसके सो जाने पर ये सारी इन्द्रियाँ प्राण में तथा प्राण इस आत्मा में लीन हो एकीभाव को प्राप्त हो जाता है। 'यही आत्मतत्त्व है। जब तक इन्द्र को इस आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं था, तब तक वे असुरों से हारते रहे, किन्तु जब वे इस रहस्य को जान गये, तब असुरों को पराजित कर सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ हो गये, स्वर्ग का राज्य तथा त्रिभुवन का आधिपत्य पा गये। इसी प्रकार जो विद्वान् इस आत्मतत्त्व को जान लेता है, उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे स्वराज्य, प्रभुत्व तथा श्रेष्ठत्व की प्राप्ति हो जाती है।●

भवबन्धन से मुक्ति के लिए श्रीवैष्णवधर्म से प्रेम करें

इस धरातल में मानव कल्याण के लिए भगवान् विष्णु से प्रवर्तित श्रीवैष्णव धर्म का पालन सभी त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियों ने किया है। आज भी मनुष्य के कल्याण का उत्तम मार्ग श्रीवैष्णव धर्म ही है।

सत्ययुग में हिरण्यकशिपु सनातन वैदिक वैष्णवधर्म के विरुद्ध आचरण करने और जनता से कराने में प्रवृत्त हो गया था। इसका परिणाम जगत् में बुराइयों का विशेष अभ्युदय हुआ। धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व जगन्नियन्ता सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु पर है। उन्होंने हिरण्यकशिपु के पुत्र के रूप में प्रह्लाद को उत्पन्न किया जो अपनी माँ के गर्भ में ही परतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। जब कयाधु गर्भवती थी तब नारद ने अपने आश्रम पर उसे वेदान्त रहस्य का उपदेश दिया था। जैसे माँ का खाया हुआ अन्न और पीये हुए जल से गर्भस्थ शिशु परिपुष्ट होता है उसी प्रकार गर्भवती नारी जो सुनती या देखती है उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। यह एक वैज्ञानिक रहस्य है। इस पर सबों को ध्यान देना अनिवार्य है। गर्भवती नारी यदि अश्लील नृत्य और सङ्गीत से प्रेम करती है अथवा सिनेमा आदि देखती है तो निश्चित रूप से उसका पुत्र या पुत्री दूषित विचार का उत्पन्न होगा। इसलिए गर्भवती नारी को श्रीमद्भागवत, सुखसागर, गीता और रामायण आदि सद्ग्रन्थों का अध्ययन तथा सन्तों के सदुपयोग में अभिरुचि रखनी चाहिए।

नारद के उपदेश से कयाधु के गर्भ में ही प्रह्लाद पूर्ण तात्त्विक ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। उन्हें सनातन वैष्णव धर्म का रहस्य ज्ञात हो चुका था। इसलिए भगवान् विष्णु के प्रति उन्हें नैसर्गिक प्रेम था। जब हिरण्यकशिपु पञ्चवर्षीय बालक प्रह्लाद को प्यार करते हुए अपनी गोद में बैठाकर पूछा कि तुम क्या पढ़ते हो? तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि यह संसार अन्धकूप के समान है। भगवान् विष्णु के चरणों में प्रेम करना ही सच्ची विद्या है। मैं उसे ही पढ़ता हूँ। ***'सा विद्या या विमुक्तये'*** जो संसार के कष्टों से सदा के लिए मुक्त कर दे वही विद्या है।

प्रह्लाद के वचन सुनकर हिरण्यकशिपु चिन्तित हो गया, वह विचार करने लगा कि मेरे दैत्यवंश के संहार करने के लिए विष्णु सदा तैयार रहता है। जब-जब मेरे वंश की वृद्धि होती है तब-तब वह किसी न किसी रूप में आकर मेरे वंश का मूलोच्छेदन कर देता है। प्रह्लाद उसी का नाम ले रहा है। यह अच्छा नहीं है। हिरण्यकशिपु ने विद्यालय के शिक्षक संडामर्क को बुलाकर कहा कि मेरा पुत्र विष्णु भक्त होता जा रहा है। उसे आपलोग सुधारें, संडामर्क अपने नीतिशास्त्र का प्रह्लाद को उपदेश दिया; परन्तु प्रह्लाद पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। प्रह्लाद ने अपने साथी दैत्य बालकों को बुलाकर कहा कि मित्र भगवत्कृपा से मानव शरीर मिलता है, यह शरीर नश्वर है किसी क्षण भी इसका अन्त हो सकता है। इसे प्राप्त करने का एक ही उद्देश्य है कि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर भगवान् विष्णु के चरणों में अपने को समर्पण कर दे। भगवान् विष्णु जगदाधार सबके स्वामी सबकी आत्मा तथा जगत् के कारण हैं उनसे प्रेम करने पर ही परम शान्ति मिलती है।

अतः तुम सब दानवीय गुणों को छोड़कर नारायण का भजन करो। उसके भजन बिना कल्याण नहीं होगा—

सुनो मित्र यह सत्य वचन,
दुर्लभ तन छनहि बिलाता है।
यह लख बुध भगवत धर्मों को,
बचपन से अपनाता है।।१।।
इन्द्रिय सुख बिन यत्न किये सब,
आप आप मिल जाता है।
जैसे सुख सब बिनहि बुलाये,
अपने से चल जाता है।।२।।
अहो मित्र कल्याण कबहु नहीं,
भगवत् पद विनु पाता है।

श्रुति पुराण सद् ग्रन्थ सकल मिलि,
सदा एक स्वर गाता है।।३।।

प्रह्लाद श्रीनारद जी के द्वारा प्राप्त वेदान्त रहस्य के उपदेश से दैत्य बालकों को दानवीय स्वभाव से वञ्चित कर सनातन श्रीवैष्णव धर्म के मार्ग पर ले आया।

पिता की आज्ञा पालन रूप सामान्य धर्म को छोड़कर प्रह्लाद ने विष्णु भक्ति रूप विशेष धर्म को स्वीकार किया। उससे प्रह्लाद की जगत् में विशेष महत्ता बढ़ गयी। वह भक्त शिरोमणि कहा गया। प्रात:काल जगने के बाद भागवतों का नाम एवं स्वरूप का स्मरण करना पुनीत कहा गया है। जिनमें प्रथम प्रह्लाद का नाम आया है।

प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक
व्यासाम्बरीषशुकसौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
पुण्यानि मान परम भागवतां स्मरामी।।

प्रह्लाद अपने हृदय में भगवान् विष्णु का स्वरूप सदा स्थिर रखते थे। जिससे विश्व सम्राट हिरण्यकशिपु की वे सारी शक्तियाँ प्रह्लाद के वध में असफल रही। जिसके हृदय में भगवान् का स्वरूप एवं मुख में भगवन्नाम रहता है उसे विश्व की कोई शक्ति क्षति नहीं पहुँचा सकती। आज विश्व में सुरक्षा के लिए विभिन्न भौतिक शक्तियों का मनुष्य प्रयोग करता है; परन्तु उनकी सुरक्षा नहीं हो पाती, इससे सिद्ध है कि दैवीशक्ति के अपेक्षा भौतिक शक्ति नगण्य है। प्रह्लाद ने प्रयोग करके जगत् में स्पष्ट कर दिया।

अत: वर्तमान समय में लोगों को केवल भौतिक शक्तियों का सञ्चय न कर आध्यात्मिक शक्ति का भी सञ्चय करना चाहिए।

●

गृहप्रवेश मुहूर्त्त

१. फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी गुरुवार ११-२-२०१० को ११-११से १ बजे तक
पुन: संध्या- ५-३९ से ७-५२ तक सिंह लग्न में।
२. ज्येष्ठ शुक्ल दशमी सोमवार २१-६-२०१० को ९-२१ से ११-३४ दिन में सिंह लग्न।
३. ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार २४-९-२०१० को ९-८ से ११-१२तक दिन में सिंह लग्न।

●

समय शुद्धि

पौष कृष्ण आमावस्या १६-१२-२००९ को पूर्व में शुक्रास्त फाल्गुन कृष्ण अष्टमी ६-२-२०१० को पश्चिम में शुक्रोदय: अस्त से पूर्व तीन दिन वार्धक्य दोष और उदय से तीन दिन बाद तक बाल्य दोष माना गया है। इस बीच में वैवाहिक माङ्गलिक कार्य नहीं होंगे। फाल्गुन शुक्ल तृतीया १७-२-२०१० को पूर्व में गुरु-अस्त चैत्र शुक्ल द्वितीया १७-३-२०१० से शुद्ध वैशाख कृष्ण चतुर्दशी १३-४-२०१० तक मीन के सूर्य होने से खरमास रहेगा।

अधिक वैशाख शुक्ल पक्ष प्रतिपद १५-४-२०१० से अधिक वैशाख कृष्ण अमावस्या १४-५-२०१० तक मलमास हैं। शुद्ध वैशाख शुक्ल पक्ष तेरह दिन के होने कारण १५-५-२०१० से २७-५२०१० तक माङ्गलिक वैवाहिक कर्म के लिए निषेध है अत: ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपद २८-५-२०१० से वैवाहिक कृत्य के लिए समय अनुकूल रहेगा। ११-२-२०१० को गृहप्रवेश का मुहूर्त्त निश्चित किया गया है।